बाबा कांशीराम

भारतीय साहित्य के निर्माता

बाबा कांशीराम

लेखक

गौतम शर्मा 'व्यथित'

साहित्य अकादेमी

Baba Kanshi Ram : A monograph by Dr. Gautam Sharma 'Vyathit' in Hindi on the Himachali Poet, Sahitya Akademi, New Delhi (2000), Rs. 25.

प्रथम संस्करण · 1987
पुनर्मुद्रण : 1999, 2000

साहित्य अकादेमी

मुख्य कार्यालय
रवीन्द्र भवन, फीरोज़शाह रोड़, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथी मंजिल, 23 ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर मार्ग, कलकत्ता 700053
गुना बिल्डिंग, दूसरी मंजिल, 304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट,
चेन्नई 600018
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400014
केन्द्रीय महाविद्यालय परिसर, डॉ० अम्बेडकर विधि, बैंगलोर 560001

ISBN 81-260-0004-X

मूल्य : पच्चीस रुपये

मुद्रक : आर० के० ऑफसैट प्रोसैस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

विषय-सूची

जीवन परिचय	7
व्यक्तित्व	11
स्वतंत्रता संग्राम में योगदान	16
साहित्य	22
सामाजिक चेतना के कवि	25
आजादी के गायक	32
मुक्त काव्य कथाकार	37
स्वच्छन्दतावादी कवि	42
उपन्यासकार	49
उपसंहार	52
प्रमुख घटनायें	55
परिशिष्ट-1 चयन	57
संदर्भ ग्रन्थ	74

जीवन परिचय

होश्यारपुर-कांगड़ा सड़क माता चिन्तपुरनी के मन्दिर की बगल से सरकती जब ढलियारा पहुँचती है तो पौंग बांध की ओर मुड़ती संपर्क-सड़क पर 12 कि.मी. की दूरी पर स्थित है डाडासीबा। चलता-सा बसस्टैंड, नई पुरानी दूकानें, दो बैंक, डाक-तार घर, अस्पताल तथा आमों के झुरमुट में खड़ा जंगलाती डाक बंगला। सड़क पर एक गेट, जिस पर लिखा है "पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम राजकीय उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय डाडासीबा"। प्राय: यही द्वार आने वालों का स्वागत करता है और जाने वालों को विदा कहता है।

सीबा एक छोटी-सी रियासत थी। यह गुलेर राज्य से उसी प्रकार जुदा होकर बनी थी जैसे कांगड़ा से गुलेर। गुलेर के राजा शिवरनचन्द ने 1450 ए.डी में स्वयं को स्वतंत्र घोषित किया। वहीं उसने अलग राज्य की स्थापना की और उसे 'सीबा रियासत' नाम दिया था। उसके बाद इस रियासत पर पच्चीस राजाओं ने राज्य किया।

दो दशक पूर्व 'पौंग बांध' बना। 'डाडा का पत्तन'[1], जिसका नाम अब भी लोकगीतों में गूंजता है, धीरे-धीरे समुद्रनुमा बनता गया। इसका दृश्य अनेक स्मृतियों का स्मरण दिलाता है। सामने उत्तर की ओर, हरिपुर तथा गुलेर की रियासतें हैं जहाँ 'कांगड़ा कलम' का उत्स और विकास हुआ। हिन्दी के महान कथाकार स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का पैतृक स्थान भी यही है। डाडासीबा में स्कूल से कुछ दूरी पर पुरानी हवेलियों के भीतर "राधा-कृष्ण" का मन्दिर है। इसका निर्माण अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ था। इस शताब्दी में राधा-कृष्ण सम्प्रदाय प्राय: समूचे पहाड़ी राज्यों में फैला। सीबा रियासत भी उससे प्रभावित हुई। मन्दिर के भीतर बने भित्ति चित्र पहाड़ी चित्रकला के अनूठे उदाहरण हैं।

व्यास नदी के तट पर सीबा का पुराना किला है। इसका अधिकांश भाग खंडित हो चुका है। मन्दिर के निकट की ढलवां पहाड़ी पर नये आवास बने हैं। सन् 1873 में तत्कालीन राजा ने सीबा किला को छोड़ने का निश्चय करके ये भवन बनवाये थे। सन् 1632 में जहाँगीर कांगड़ा किला की ओर बढ़ा था। उसकी बेगम नूरजहाँ तथा ससुर इत-माद-उद-दाऊला 'मलून' गाँव में लगे कैंप में ठहरे थे। चिरकाल से अस्वस्थ चले आ रहे इत-माद-उद-दाऊला की मृत्यु यहीं हुई थी। इतिहास की करवटें

1. डाडा गाँव का घाट

सहता यह राज्य कब, कैसे कस्बे में बदल गया, कोई गवाह नहीं। गोलाकार पत्थरों से भरी खड्डों, नालों, बनबाड़ियों से घिरा यह कस्बा किसी के मातम में डूबा-सा लगता है। यहाँ समुद्र की तरह फैली व्यास नदी अपने भीतर अतीत की अनेक स्मृतियां, ऐतिहासिक आख्यान तथा सांस्कृतिक धरोहर की कहानियाँ समोए हुए है।

पीरों-वीरों, सिद्धों के थानों, मन्दिरों-मढ़ियों से भरे इस कस्बे के उपगाँव पद्धयाली गुर्नाड में पंडित लखनू राम के घर 11 जुलाई सन् 1882 को कांशीराम का जन्म हुआ। उनके पिता साहुकारी परिवार से थे और अपने भाई मक्खनशाह के साथ मिलकर दुकानदारी किया करते थे। वे दोनों इस क्षेत्र के माने हुए साहुकार थे। परंपरा के अनुसार उनका जन्म संस्कार बड़ी धूमधाम से मनाया गया था। डाडासीबा की प्राकृतिक सुषमा में उनके बाल्यकाल के सरस दिन बीते। उनकी प्रारंभिक शिक्षा के विषय में उनके छोटे पुत्र स्व. वैद्य स्वायाराम ने बताया था—''उन दिनों केवल एक प्राईमरी स्कूल डाडासीबा में था, जहाँ उस क्षेत्र के लड़के पढ़ने आते। तब उर्दू-फारसी की पढ़ाई होती थी। अदालती भाषा भी उर्दू ही थी। मुझे ज्ञात नहीं कि उन्होंने पांचवीं पास की थी या नहीं।''

उनके बाल्यकाल के विषय में बताया जाता है कि मस्तमलंगी करते चौगान में खेलना, मण्डप बनाना, बागीचों में आमों की डालियों पर झूलना, व्यास में घंटों तैरते रहना, ग्रीष्म में शहतूतों पर चढ़कर शहतूत खाना-बटोरना, होली के दिनों में गाँव के युवकों के साथ हुड़दंग मचाना, 'होलियां' गाना, सांझ ढले गाँव की चौपाल में साथियों के साथ बैठकर समूह रूप में लोकगीत गाना, गीतों की लय-ताल पर झूमते हुए सबको रिझाना आदि उनके स्वभाव के मुख्य लक्षण थे। हारमोनियम बजाने, तबला पर हाथ चलाने के शौक भी उन्हें बचपन से रहे। इन्हीं स्थितियों ने उनके मन में पर्वतीय सौंदर्य को सराहने की भावना पैदा की। गुनगुनाती हवाओं और संगीत में झूमती-बहती नदियों ने गीत रचने-गाने के अवसर दिए। रामलीला तथा रासलीला की घुमक्कड़ पार्टियां जब कभी इस कस्बे में आतीं तो कांशीराम उनकी जी भर कर सेवा करते, उनसे गीत-संगीत के सुर-ताल सीखा करते। उन्हीं से प्रेरित होकर गाँव में रामलीला तथा ड्रामा पार्टी का गठन भी किया। होलियों के अवसर पर स्वांग भी निकालते रहे। इस प्रसंग में आज भी जब कभी बात चलती है तो लोग उनकी गायकी, अभिनय तथा अदायगी की चर्चा करते नहीं थकते।

उनके छोटे पुत्र स्वायाराम वैद्य बताते— ''पिताजी का विवाह 10-11 वर्ष की आयु में ही हो गया था। माता रेवती की आयु तब पाँच वर्ष की थी। उस समय पहाड़ में बच्चों का छोटी आयु में ही विवाह कर देने का रिवाज़ था। सन् 1893 में उनके पिता का देहांत हो गया। एक वर्ष बाद (सन् 1894) माता रेवती भी स्वर्ग सिधार गयीं। पिताजी को उनके ताया मखनू राम जी अपने यहां ले गए जिनकी अपनी ज़िमींदारी थी। वे 3-4 वर्ष तक उनके पास रहे। सोलह वर्ष की आयु में सांसारिक जीवन को निकट से देखने की लालसा हुई इसलिए वे वहाँ से चले आए और नूरपुर में एक वकील के पास मुन्शी हो गए। इस व्यवसाय में उनका मन नहीं लगा। सन् 1898 में लाहौर चले गए। वहाँ एक दूर-पार

के रिश्तेदार थे, उनके पास डेरा डाल दिया। उन्हें गाने-बजाने का शौक था। गला भी सुरीला था। इस रुचि और गुण के कारण वे समाज के प्रतिष्ठित लोगों के संपर्क में आए। उस समय लाहौर में "शहनशाह जी महाराज" नाम के कोई साधु-फकीर रहा करते थे। पापड़ मंडी में उनका एक धार्मिक ठिकाना था जहाँ गाने-बजाने की महफिलें लगी रहतीं। महाराज जी के संपर्क में आने से उनकी गायन कुशलता बढ़ती गई।"

उन दिनों पहाड़ से मैदानी नगरों में गए हर बालक अथवा युवा को प्रायः 'मुण्डू' कहकर पुकारा जाता था। मुण्डू साधारण, अनजान, अनपढ़ तथा ज़िन्दगी के दावपेंच से अबोध होते हैं, ऐसी धारणा के कारण मैदानी साहूकार इन पहाड़ी मुण्डुओं का जी भरकर शोषण किया करते। कांशीराम के लिए ऐसा व्यवहार असह्य हो गया। वे अनारकली बाज़ार की धोबी मण्डी में कर्मचन्द थापा के साथ भी रहे। वहाँ भी संगीत का माहौल था। वहाँ रहते वे ऐसे पंजाबी युवाओं के संपर्क में भी आए जो स्वतंत्रता संग्राम में संघर्षशील थे। ऐसे व्यक्तियों से संपर्क होना उनके जीवन की दिशा बदलने में सहायक हुआ।

सन् 1905 में कांगड़ा में एक भयंकर भूचाल आया। इसमें असंख्य लोगों और पशुओं की हानि हुई। कांगड़ा तथा ज्वालामुखी के मन्दिर क्षतिग्रस्त हुए और ऐतिहासिक किले तथा राजभवन भी प्रभावित हुए। उन दिनों लाला लाजपत राय के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी की ओर से कांगड़ा क्षेत्र में राहत कार्य शुरू किया गया। इसमें स्थानीय लोगों ने भी भाग लिया। कांशीराम भी उनमें सम्मिलित हुए। इसी दौरान उनका परिचय लाला लाजपत राय से हुआ। कालान्तर, सन् 1906 में वे सरदार अजीतसिंह, सूफी अम्बाप्रसाद और मौलवी बरकत उल्ला जैसे प्रमुख देशभक्त नेताओं से भी मिले और प्रभावित हुए। रोटी-रोज़ी की तलाश में भटकते उन्हें जीवन की सही दिशा मिल गई। उनकी सोच में बदलाव आया। सन् 1908 में सूरत मण्डी के एक चौबारे पर लाला हरदयाल से हुई भेंट भी उनके जीवन में नया मोड़ लाने में कारण बनी।

सन् 1911 में दिल्ली में वायसराय लार्ड हार्डिंग का दरबार था। कांशीराम अपने कुछ मित्रों सहित वहाँ गए। लार्ड हार्डिंग पर बंब फेंकने की घटना ने वहाँ की स्थिति बदल दी, उनके साथी इधर-उधर बिखर गए। वे इस घटना से अति प्रभावित हुए। सन् 1913 में वे लाहौर लौट आए और अपनी घर गृहस्थी से जुड़े रहे। इसी वर्ष इनके घर ज्ञानचन्द और सन् 1917 में स्वायाराम, दो लड़के हुए। सन् 1917 में ही उनकी पत्नी सरसुती का देहांत हो गया। तत्पश्चात लाहौर से वे अपने गाँव 'डाडासीबा' लौट आए।

उस समय उनके ताया डाडा में दुकानदारी करते थे। कांशी राम उनके साझी (हिस्सेदार) हो गए। तब कांगड़ा की जसौर (व्यापारिक)मंडियां होशियारपुर और अमृतसर थीं। काम के सिलसिले में प्रायः इन मंडियों में उनका आना जाना लगा रहता। सन् 1919 में जब रोल्ट एक्ट विरोधी प्रदर्शनों पर जलियांवाला बाग में जो नृशंस हत्याकांड हुआ, उस समय कांशीराम अमृतसर में ही थे। इस घटना से उनके मानस में विकसित हो रही देशभक्ति-भावना को बढ़ावा मिला। उन्होंने महात्मा गांधी का अनुचर बनकर देशोद्धार के

कार्य में जुट जाने का संकल्प किया। परिणामतः सन् 1919 में उन्होंने सत्याग्रह का हल्फनामा भरा और कांग्रेस के आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। परिवार के लिए आजीविका कमाने का इरादा अमृतसर में ही रह गया।

सन् 1920 में कांशीराम की गिरफ्तारी के वारंट निकले और धर्मशाला जेल में बन्दी हुए। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रही। लाहौर जाकर उनकी रुचि व्यवसाय की अपेक्षा स्वतन्त्रता-आन्दोलन में अधिक बढ़ गई। प्रिणामस्वरूप जेल यात्रायें शुरू हुईं। रोज़गार का कोई निश्चित जुगाड़ नहीं बन पाया। उनकी आर्थिक स्थिति के विषय में एक घटना उस पत्र में मिलती है जो उन्होंने किशनचन्दपुरी, सेक्रेटरी कांग्रेस कमेटी धर्मशाला, को इस गरज़ से थमाया था कि वे इसे उनके पुत्र को दे देवें। पत्र बहुत पहले का लिखा था। जब पुरी ने यह पूछा कि ऐसा पत्र डाक द्वारा क्यों नहीं भेज दिया, कब का लिखा यूं ही जेब में पड़ा है ? कांशीराम ने उत्तर दिया— मेरी जेब में टिकट के पैसे नहीं थे। प्रो. चन्दवर्कर ने भी अपने शोधपत्र में ऐसा ज़िकर किया है कि उनके साथी महाशय अपनी जेब में पोस्टकार्ड रखा करते ताकि कांशीराम अपने पत्रों का उत्तर दे सकें। इस घटनाक्रम से उनकी शोचनीय आर्थिक स्थिति का पता चलता है।

23 मई 1931 के दिन सरदार भगतसिंह, राजगुरू तथा सुखदेव को लाहौर में फांसी दिए जाने की घटना से वे इतने क्षुब्ध तथा उत्तेजित हुए कि उन्होंने आजीवन काले वस्त्र धारण करने और ब्रिटिश सरकार से जूझने का व्रत लिया और 'स्याहपोश जरनैल' कहलाए। सन् 1931–1943 की अवधि में वे तीन बार जेल गए। देश की आज़ादी को समर्पित कांशीराम ने नौ वर्ष जेल काटी, देश की आजादी के लिए समाज को नयी दिशा देने वाले गीत, गीतियाँ तथा कवितायें लिखीं और गाँव-गाँव जाकर सुनाया। अपने लक्ष्य की साधना में अनेक कष्ट एवं यातनायें सहते, आज़ादी की सुबह को देखने से पूर्व ही कांशीराम 15 अक्तूबर 1943 को चिर निद्रा में लीन हो गए।

अपनी जेल यात्राओं के दौरान बाबा कांशीराम को अनेक कष्ट झेलने पड़े थे। जेल की दुरावस्था में अमानवीय यातनाओं का सामना करना पड़ा था। अटक किले की जेल से लौटकर उन्होंने जो कविता इस यात्रा के संस्मरण के रूप में लिखी उसमें उन्होंने वहाँ जेल अधिकारी द्वारा पिस्तौल दिखाकर डराने-धमकाने एवं डंडों से प्रताड़ित करने का विशद विवेचन किया है। जेल में होने वाले ज़ुल्मों और वहाँ की कष्टकारक स्थितियों का सामना करते हुए बाबा कांशीराम अपने हृदय में आज़ादी की आशा का दीपक जलाए रखते हैं।

व्यक्तित्व

कांशीराम एक सुन्दर और सुडौल व्यक्ति थे। तेज भरा चौड़ा माथा, घनी भौहों से ढकी गहरी आँखें, तीखी नाक, बड़ी-बड़ी मूंछें, लम्बी दाढ़ी, उसमें बने पतले गाल, दरम्याना कद-काठ, काले कपड़ों में सजा-संवरा व्यक्तित्व देखते ही बनता। उन्हें जो देखता, एकटक देखता रह जाता। वे कर्म को महत्व देते। जीवन में किसी संकट से घबराते नहीं थे। जीवन की निस्सारता को समझते थे। वे ज़ोरदार शब्दों में कहते—

''ज़िन्दगी मौत इक कहानी है
कांशी इक मुट्ठ राख की निशानी है
सब्बी किछ बेसार, बेमतलब, निह्री भाषा,
पर जीणे कने मौता रे मंझे-मंझे कम्म तां करणा पौणा।''

अर्थात- जीवन और मृत्यु एक कहानी मात्र है। एक मूंठ भर मिट्टी के अतिरिक्त कुछ नहीं। यहाँ सब कुछ व्यर्थ है, निस्सार है। केवल कथन की बात। परन्तु जीवन और मृत्यु के बीच भी जीने के लिए कर्म तो करना ही पड़ेगा।

बी.आर. मुसाफिर[1] अपनी स्मृति के दायरे में बात करते हुए सन् 1940 की एक घटना सुनाते हैं- ''तब मेरी आयु 17 वर्ष की थी, ज्वालामुखी में एक बड़ी कान्फ्रेंस हुई। उसमें कार्यकर्ताओं ने खादी वर्दी पहनी थी। बाबा ने काला कुर्ता, काली अचकन, काला पाजामा। काले पहरावे में उनकी सफेद दाढ़ी का प्रभाव मुझे उनकी ओर खींचता रहा। मैंने जिज्ञासावश पूछा— ये काले कपड़े क्यों पहने हैं? तो बोले—''ये काले कपड़े विदेशी हकूमता दा सोग है। जाह्लू आज़ाद होना, ताह्लू मैं ऐह् काले कपड़े नी पाने।'' अर्थात ये काले वस्त्र विदेशी हकूमत का शोक मानने हेतु पहने हैं। जब आज़ाद हो जाएंगे, तब मैं काले वस्त्र नहीं पहनूंगा।

कांशीराम ने ग्रामीण जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं को निकट से देखा और भोगा था। इसलिए यह जानते हुए भी कि अंग्रेज़ी हकूमत में आज़ादी का नाम लेना एक जुर्म है, तब भी उन्होंने राष्ट्रीयता का सन्देश पहाड़ में घूम-घूम कर और गाँव अथवा मैदानी इलाकों में घर-घर जाकर सुनाया। उन्होंने नौजवानों के भीतर अपने गीतों के माध्यम से एक जागृति पैदा कर दी। वे निर्भीक व्यक्तित्व के मालिक थे। वे ज़ोरदार स्वर

1. हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश के निवासी, लेखक हैं, स्वतन्त्रता संग्राम में रहे हैं।

में गाते—

"हुण असां गुलाम नी रहणा
चाहे लक्ख दुखां जो सहणा
न रेही नगदी, नां रेहा गहणा
जदों तिक्कर ऐह हकूमत रैहणी
तदों ताईं ऐंह हालत रैहणी
कांशीराम रा मन्नों तुसां कैहणा।।"

अर्थात् - हम अब गुलाम नहीं रहेंगे। चाहे इसके लिए लाख दु:ख क्यों न सहन करने पड़ें। जब तक यह हकूमत रहेगी तब तक न नकदी रहेगी न आभूषण (सोना-चांदी) तब तक ऐसी ही हालत रहेगी, देश की। अत: कांशी का कहना मानो।

वे जीवन पर्यन्त पहाड़ी समाज में व्याप्त कुरीतियों और गरीबी के उन्मूलन तथा स्वतंत्रता चेतना को जगाने के गीत गाते रहे। उनके मन में सदैव एक विद्रोह-सा रहा, इन सबके प्रति परन्तु सदैव अहिंसा पथ पर अग्रसर रहे। अपने हाल से संतुष्ट था बाबा कांशीराम का व्यक्तित्व। उनका यह पद-स्वयं गवाह है—

"आलमां, फाज़िलां जो माया नी दित्ती
खबरै फिरी सैह क्या करी दिन्दे
कवियां लखारियां जो / न मुकणे आली
मुहब्बत दित्ती / कने कांशीराम गलांदा।
असां जो गरीबिया / रजायी दित्ता।"

अर्थात् आलिमों- फाज़िलों (विद्वानों) को धन-दौलत नहीं दी। अन्यथा अज्ञात वे क्या कर देते। कवि-लेखकों को तो अनन्त प्रेम दिया। कांशीराम कहता है कि हमें तो गरीबी ने तृप्त कर दिया है। वे समूचे राष्ट्र को अपना घर समझते थे।
इस भावना का परिचय एक कविता में उन्होंने यूं दिया है:-

"तू मत पुछ मेरिये भैणे!
मैं कुण, कुण घराना है मेरा?
सारा हिन्दोस्तान है मेरा
भारत मां है माता मेरी,
अंगैं जंजीरां जकड़ी है।"

अर्थात्—'मेरी बहन! यह मत पूछो, मैं कौन हूँ? मेरी जाति क्या है? मैं कहाँ का हूँ? मेरा तो सारा हिन्दोस्तान अपना है। भारत माँ मेरी माता है, जिसका अंग-अंग गुलामी की जंजीरों में जकड़ा है।' इससे स्पष्ट है कि वे समूचे भारत को अपना घर समझते थे और स्वयं को एक भारतीय।

पहाड़ी संगीत और लोकगीतों की सरस माधुरी से प्रभावित उनका बाल्यकाल संगीत प्रेम की ओर भी अग्रसर रहा। लाहौर में मिला संगीत का माहौल उनकी इस प्रवृत्ति

के विकास में सहायक हुआ। देश प्रेम की मस्ती ने उन्हें आज़ादी का गायक बना दिया। हिमाचल के पर्वतीय क्षेत्र में उनके गीत गूंजते रहे। आज़ादी का दीवाना कांशीराम आज़ादी के गीत गाता घूमता रहा। उन्हें शास्त्रीय संगीत का भी ज्ञान था। डॉ. मनोहर लाल के अनुसार— "उनका गला बड़ा सुरीला था। सन् 1902 में जब लाहौर गए तो वहाँ की सभाओं-जलसों में भाग लेने लगे। वे राष्ट्र प्रेम के गीत लिख-लिखकर सुनाते थे। आप शास्त्रीय संगीत के भी पंडित थे और हरवल्लभ के मेले में, भी कई बार सम्मिलित हुए।"

इस संदर्भ में वह सूचना पत्र भी उल्लेखनीय है जो ज्वालामुखी में उनकी स्मृति में डाक टिकट जारी करने पर बांटा गया था। उसमें लिखा है—"तेरह वर्ष के हुए तो पिता का निधन हो गया। परिवार के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी छोटी उम्र में ही पड़ गई। उन्हें संगीत से बड़ा लगाव था। बचपन से ही पहाड़ी में गीत बनाने-गाने की मस्ती थी। काव्य-तुकबंदियां करके भी सुनाया करते। गाँव में जीविकोपार्जन की समस्या बन गई अतः काम की तलाश में लाहौर चले गए। संगीत आदि की दिशा में कोई विशेष प्रगति होने से पहले ही युवा कांग्रेस के नेताओं के संपर्क में आ गए।"

गाँव की चौपाल में बैठकर गपशप करना, गीत सुनाना, कथा लगाना तथा ग्रामीण खेल तमाशों में रूचि लेना भी उनका स्वभाव था। ग्रामीण रंगमंच पर होलियों के स्वांग निकाला करते। रासलीला, रामलीला तथा धार्मिक-सामाजिक नाटकों के मंचन में भी बराबर भागीदारी निभाते। सन् 1930-31 तक उनका उत्तर भारत के राजनैतिक क्षेत्र में अच्छा स्थान बन चुका था। ऊना की एक विशाल राजनैतिक कान्फ्रेंस में श्रीमती सरोजनी नायडू भी आई थीं। इस कान्फ्रेंस में कांशीराम ने पहाड़ी धुनों में आज़ादी के गीत सुनाए जिनकी सुरमाधुरी पर रीझकर श्रीमती नायडू ने इन्हें "बुल-बुले पहाड़" का खिताब दिया था।

कांशीराम के साथ गाँधी, बाबा, बुल-बुले पहाड़ तथा स्याहपोश जरनैल शब्दों का जुड़ना एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रखता है। इन शब्दों के निजी सन्दर्भ हैं जो उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उद्‌घाटित करते हैं। जिस प्रकार बीसवीं शती के आरम्भ में मोहनदास कर्मचन्द का उपनाम गंधी से गाँधी हो गया और इत्र-तेल का व्यापारिक अर्थ छोड़कर सत्याग्रही का पर्याय बन गया। उसी प्रकार कांगड़ा जनपद में मुक्त विचरण करने वाले मुक्त छन्द में स्वाधीनता का सन्देश देने वाले कांशीराम "पहाड़ी गाँधी" पुकारे जाने लगे। सन् 1937 में गढ़दीवाला (होशियारपुर) की विशाल जनसभा में भारत रत्न पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा कांशीराम "पहाड़ी गाँधी" उपनाम से सम्मानित हुए थे। पं. नेहरू के इस कथन का जनसमूह ने तालियों की गड़गड़ाहट से अनुमोदन किया।

भारत में 'बापू' शब्द का व्यवहार पिता के अर्थ में होता है। भारतवासियों के हृदय सम्राट महात्मा गाँधी स्वाधीनता के प्रेरणा स्त्रोत होने के कारण 'बापू' और राष्ट्रपिता बन गए। संभवतया इसी रूढ़ि के रहते पंजाब में लाहौर से लेकर कांगड़ा तक स्वाधीनता आंदोलन में एक नया स्वर देने वाले, सफेद दाढ़ी-मूंछ वाले कांशीराम 'बाबा' कहकर

पुकारे जाते थे।

वे दासता के जीवन को नरक के समान समझते थे। उस समय भारतीयों की मानसिकता दो वर्गों में बंट चुकी थी। भारत माँ की जंजीरों को एकता से ही तोड़ा जा सकता है। तभी देश को स्वर्ग बनाया जा सकता है। ऐसा विश्वास लेकर वे मुक्त कण्ठ से गाते फिरते—

"आओ रलि़मिली़ सारे, हिन्द आज़ाद कराईये।
नरक बणी गिया देस असां दा,
फिर तौं सुरग बनाईये।"

उन्हें दु:ख था कि समस्त देश में आज़ादी के लिए संघर्ष हो रहा है परन्तु अपना क्षेत्र कांगड़ा, डोगरा देस सोया पड़ा है। उनके भीतर का कवि गा उठा ....

"इक बरी जमणा, अम्मा-बाबे दी लाज बचाणी,
देस बड़ा है, कौम बड़ी है
कुल़जा मत्था टेक्की कने
इन्कलाब सदाणा, ओ कांसी, असां जेल जाणा।"

अर्थात् - मनुष्य जन्म एक ही बार लेना है। माता-पिता की लाज बचानी है। देश बड़ा है, जाति बड़ी है। कुलदेवी को मस्तक झुकाकर इन्कलाब का नारा लगाकर, जेल जाना है।

उनका पूरा जीवन समाज को समर्पित था। समाज सुधारक के रूप में उन्होंने महिला वर्ग में नयी चेतना लाने का प्रयास किया। उन्हें परदा प्रथा से बाहर निकलने का सन्देश दिया। इसका आरंभ उन्होंने अपने ही घर से किया। वे अपनी भतीजी रामरक्खी, जो बाद में ऊषा शारदा के नाम से लोकप्रिय हुई, को लेकर जनसभाओं में जाते और उससे भाषण दिलवाते। समाज ने जब उन पर रामरक्खी को लेकर चर्चा करनी शुरू की तो उन्होंने उसका विवाह अपने साथी शिवकुमार शारदा से करके एक मिसाल प्रस्तुत की।

पहाड़ी समाज की गरीबी के प्रति तो वे अति संवेदनशील रहे। उनका काव्य इस व्यथापूर्ण अनुभूति से भरा पड़ा है। उन्होंने पहाड़ी समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा छूआछूत पर भी खूब लिखा। उनके काव्य को पढ़ने-सुनने से उनके समाज सुधारवादी व्यक्तित्त्व का परिचय मिलता है।

पहाड़ में जन्मे कांशीराम का व्यक्तित्व पहाड़ से भिड़ने वाला साबित हुआ। कद में छोटा, परन्तु उद्देश्य में महान कांशीराम, बाबा कांशीराम से पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम बना। अपनी मातृभाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने के कारण पहाड़ी-डोगरी का राष्ट्रवादी कवि और मुक्त छन्द का प्रणेता कांशीराम साधारण परिवार से जुड़ा होने पर भी, राष्ट्र तथा भाषा को समर्पित होने के कारण असाधारण बन गया।

23 अप्रैल, 1984 को बाबा कांशीराम की स्मृति में भारत सरकार की ओर से डाक टिकट जारी किया गया। ज्वालामुखी (कांगड़ा) में एक भव्य समारोह आयोजित हुआ

जिसमें स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने यह टिकट जारी करके उन्हें मान-सम्मान दिया। इससे न केवल उनका बल्कि समूचे हिमाचली स्वतंत्रता सेनानियों का गौरव बढ़ा। उनके पुत्र स्वायाराम वैद्य ने बताया कि इस अवसर पर इन्दिरा जी ने जो भाषण दिया उसके ये शब्द मुझे स्मरण हैं:-

''मुझे धुंधली-सी याद है कि जब मैं छोटी-सी थी तब बाबा कांशीराम मेरे दादा मोतीलाल नेहरू के पास सलाह मशविरे के लिए आते थे।''

इस सारे विवरण से स्वत: सिद्ध होता है कि कांशीराम पहाड़ी गाँव के साधारण परिवार से होने पर भी अपने विविध आयामी व्यक्तित्व के कारण अपने जीवनकाल में जो कुछं कर गए, जो कुछ लिख गए, वह न केवल हिमाचल के लिए, वरन् समूचे भारत के लिए गौरव का विषय है। हिमाचल प्रदेश भाषा-संस्कृति विभाग ने भी उनके नाम पर एक साहित्य-पुरस्कार रखकर उनके कवि-मानस को सम्मान दिया है।

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

पिता की मृत्यु के बाद कांशीराम रोटी-रोज़ी की तलाश में लाहौर पहुँचे। वहाँ के वातावरण ने जहाँ उनमें संगीत के अनुराग को विकसित किया वहाँ पंजाब के स्वतंत्रता-प्रेमी युवाओं तथा नेताओं से मिलने के अवसर भी प्रदान किए। ऐसे परिवेश में रहते उनकी विचारधारा राष्ट्रीय चिन्तन की ओर उन्मुख हुई। वहाँ स्वर्गीय लाला हरदयाल एम.ए., भगत सिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह, बिछोवाली मण्डी के सूफी अम्बा प्रसाद, बरकत उल्ला तथा उस समय के लोकप्रिय लोकगीत "पगड़ी संभाल जट्टा," के लेखक लालचन्द 'फलक' ने भी उन्हें प्रभावित किया। उत्तरोत्तर उनकी रुचि घर-गृहस्थी में कम होने लगी। स्वतंत्रता की चाहत में उनकी आस्था अधिक गहरी होती चली गई।

सन् 1905 में कांगड़ा क्षेत्र में भयंकर भूचाल आया। इसके राहत कार्यों में लाला लाजपत राय यहाँ आए। इसी अवधि में बाबा कांशीराम को लाला लाजपतराय से मिलने का अवसर मिला। ऐसे महानुभावों के संपर्क एवं प्रभाव में उनके व्यक्तित्व में स्वतंत्रता की चेतना तेज़ी से जागृत हुई।

सन् 1911-12 में आयोजित दिल्ली-दरबार भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसमें भारतीयों के गोरा-भक्ति (अंग्रेज़ की तरफदारी) तथा देश-भक्ति, दोनों रूप सामने आये। कांशीराम भी लाहौर से ही अपने मित्रों के साथ दरबार देखने दिल्ली गए। वहाँ जो कुछ घटा उसे अपनी आँखों से देखा। लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने की घटना के परिणामस्वरूप क्रांतिकारियों के प्रति ब्रिटिश सरकार का रवैया बदला। दमन चक्र शुरू हुआ। मास्टर कर्मचन्द, अवध बिहारी, तथा भाई बालमुकुन्द जैसे राष्ट्रभक्त 23 दिसम्बर 1912 के बाद कैद किए गए। दिल्ली केस की सज़ा में ही 8 मई 1915 के दिन मास्टर अमीरचन्द तथा अवध बिहारी को फाँसी हुई। तीन वर्ष बाद भाई बालमुकुन्द फाँसी पर लटका दिए गए। बसन्त कुमार ने सेन्ट्रल जेल अम्बाला में 11 मई 1915 को फांसी का तख्ता चूमा। प्रो० नारायण चन्द पराशर के अनुसार- "इस अवधि में कांशीराम भूमिगत हो गए थे।"

उस समय उनकी आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय थी। सन् 1917 में छोटे पुत्र स्वायाराम का जन्म हुआ। एक वर्ष बाद धर्मपत्नी सरस्वती देवी का देहान्त हो गया। लाहौर से गाँव लौटना पड़ा। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ बढ़ गईं थीं। गाँव आकर भी सुख की नींद नहीं सोए। संयुक्त परिवार था। गाँव में भयंकर संक्रामक रोग फैला। उनका परिवार भी

उसकी पकड़ में आ गया। एक ही दिन चार व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। गाँव के भीतर एक मास की अवधि में चालीस व्यक्ति मर गए। ऐसी स्थिति ने उनके मानस को जैसे प्रभावित किया उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी दो कविताओं— "दुक्खे दे मने च रहम नी हुण्दा" तथा "दुक्ख कने सुख"—में की है। गाँव तथा घर की स्थितियों से प्रभावित कांशीराम पुनः लाहौर लौट गए। वहाँ एक साथी के साथ मिलकर दुकानदारी की जो कुछ समय के लिए खूब चली।

रोल्ट एक्ट के विरोध में सन् 1919 में अमृतसर में जलियाँवाला बाग के नृशंस नर-संहार ने उनके मन को अति प्रभावित किया। उसके बाद कांशीराम अपने गाँव लौट आए और स्वतंत्रता-संघर्ष में कूद पड़े। सन् 1920 में उन्हें घर पर ही बन्दी बनाया गया। जब पुलिस ने इनके घर छापा मारा तो वे अपनी भावज की चौबरसी में व्यस्त थे। सिपाहियों ने उन्हें हथकड़ी लगा दी। डाडासीबा के राजा को जब यह पता चला तो उन्होंने कांशीराम को इस शर्त पर ज़मानत देकर रिहा करवाया कि वे श्राद्ध-कर्म पूरा होने के बाद स्वयं को पुलिस के हवाले कर देंगे। उन्होंने वैसा ही किया और धर्मशाला जेल में बन्दी हो गए। शिवालिक क्षेत्र में किसी स्वतंत्रता सेनानी की संभवतया यह पहली गिरफ्तारी थी। उन्हें बन्दी बनाने का कारण सत्याग्रह आन्दोलन था जिसके परिणामस्वरूप अन्य लोकप्रिय स्वतंत्रता सेनानियों ने उनका अनुसरण किया था। वे डायरी लिखा करते थे, उसी में ऐसी घटनाओं का वर्णन मिलता है।

उन्हीं दिनों लाला लाजपत राय को माण्डले जेल से धर्मशाला जेल में भेजा गया था। उस समय कांगड़ा के नौ अन्य प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी- कामरेड रामचन्द, ठाकुर पंचमचन्द, श्री प्रीतम सिंह, श्री सर्वमित्र, पंडित मिलखीराम, श्री चेतराम मिहाल तथा लाला बाशीराम भी जेल में बन्दी थे। प्रो. नारायण चन्द पराशर के अनुसार—

> *"लाला लाजपत राय ने यहां आने पर बाबा कांशीराम*
> *की सबसे अधिक सराहना की थी जिन्होंने आज़ादी के*
> *लिए सर्वप्रथम गिरफ्तारी दी और सबसे पहले बन्दी बने।"*

सन् 1921 में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जब पहली बार शिमला आए तो लाला लाजपत राय तथा पंडित मदन मोहन मालवीय भी उनके साथ थे। उनसे पहाड़ी रियासतों के युवक काफी प्रभावित हुए और परिणामस्वरूप समूची पहाड़ी रियासतों में राजनैतिक चेतना जागी थी। महात्मा गाँधी ने जब रोल्ट एक्ट के विरोध में सत्याग्रह आरंभ किया था तो उनके आह्वान पर कांशीराम ने भी इसमें भाग लिया था। उसके बाद गाँव-गाँव घूमना, घर-घर जाकर आज़ादी के गीत गाना उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य बन गया था। इसी समय उनके भीतर का कवि जागा। वे तत्कालीन अनुभव को कविता और गीत के माध्यम से व्यक्त करने लगे। स्वतंत्रता आन्दोलन तथा जनजागरण उनकी कविता के विषय बने। स्वराज्य प्राप्ति के लिए आम जनता को जागरूक किया। उन्होंने अपनी स्वतंत्र तथा निर्भीक वाणी से पहाड़ी लोकमानस में आज़ादी की चाहत पैदा की। स्वदेशी का संदेश अपना कर

खद्दर कातने तथा पहनने का सन्देश जन-जन में फैलाया। वे अपनी भतीजी रामरक्खी को भारत माता बनाकर डोली में बिठाकर, हाथ में चरखा देते, गाँव-गाँव घुमाते खादी का प्रचार करते थे।

सन् 1927 में ठाकुर हज़ारा सिंह और कांशीराम ने सुजानपुर ताल में विशाल जनसभा को सम्बोधित करके अंग्रेज़ी के विरुद्ध आन्दोलन का आह्वान किया। बिलोची पुलिस ने जनसभा की भीड़ पर निर्दयता से लाठियां चलाईं, गाँधी टोपियां तथा तिरंगा छीन लिया। सत्यदेव बुशहरी लिखते हैं—"इस घटना ने कांगड़ा के लोगों के मन में अंग्रेज़ों के विरुद्ध आंदोलन भड़का दिया और सन् 1930 तक राष्ट्रीय आन्दोलन ने जड़ें पकड़ लीं। इस आन्दोलन में कांशीराम तथा ठा. हज़ारा सिंह का योगदान अविस्मरणीय है।"

23 मार्च 1931 के दिन महान स्वतंत्रता सेनानी सरदार भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेव की फांसी का दुखद समाचार सुनकर बाबा कांशीराम का मन बड़ा विक्षुब्ध हुआ। उस घटना का उनके जीवन पर इतना प्रभाव हुआ कि उन्होंने प्रण लिया—"जब तक भारत स्वतंत्र न हुआ तब तक मैं काले कपड़े धारण करूँगा।" डा. श्यामलाल डोगरा ने लिखा है—"काला कुर्ता, काली टोपी, काला पट्टू पहनने, हाथ में काले रंग का झोला लेने और काला पैन प्रयोग करने पर कांशीराम "स्याहपोश जरनैल" बन गए। ऐसे भाव उन्होंने अपनी कविता "अपना देश अपना वेष" में गा-गा कर व्यक्त किए और लोगों को जागृत किया। प्रो. रामनाथ शास्त्री ने भी उनके पुत्र स्वायाराम वैद्य के पत्र का हवाला यूँ दिया है— "मार्च 1931 ई० कोला लैईये अक्तूबर 1943 ई० तग्गर, जिस दिन उन्दा सुर्गवास होआ, ओ स्याहपोश ही बने रेह्। जाह्लू मेरा ब्याह होआ तां वि उन्हां काले कपड़े ही पाइयो थे। उन्हां दा अंत समय दा कफन वी काला ही था। उन्हां अपनी जिन्द देस सेवा ते अर्पण करी दित्ती थी। उन्हां अपनी गरीबी ने कदी गिला न कित्ता। अपना घर-बार त्यागी करी- ओ देसै दे, देस उन्हां दा- गलाई कने मने दियां सारियां उदासियां, हास्से दे कटोरे च पाई के, घुट-घुट करी पीने आले—ऐसे थे ओ पहाड़ी गांधी।"

अर्थात्-मार्च 1931 से अक्तूबर 1943 तक, जिस दिन उनका स्वर्गवास हुआ, वे स्याहपोश बने रहे। जब मेरा विवाह हुआ तब भी वे काले वस्त्र पहने थे। उनके अंत समय का कफन भी काला ही था। उन्होंने अपना जीवन देश सेवा के लिए अर्पण कर दिया था। उन्होंने अपनी गरीबी से कभी गिला नहीं किया। अपना घर-बार त्याग कर वे देश के, देश उन्हीं का, कहकर मन की तमाम उदासियों को हंसी के कटोरे में डालकर, गट-गट कर पीने वाले- ऐसे थे वे पहाड़ी गाँधी।" राष्ट्र के लिए आहूत होने वाले वीर सपूतों के प्रति वे कितने संवेदित हुए इस कविता में यूं व्यक्त है:-

"फांसिया दा फंदा ही नी
फांसिया दी टोपी पाणे बेले बी
इन्कलाब जिन्दाबाद बोल्या
राजगुरु, भगत सिंह, सुखदेव

फांसी ते झूलणा पेआ
काले कपड़े पाई के असां सोग मनाया।"

अर्थात्–देशभक्तों ने फांसी का फंदा ही नहीं, फांसी की टोपी पहनते भी इन्कलाब! ज़िन्दाबाद! बोला। राजगुरू, भगत सिंह तथा सुखदेव को फांसी के तख्ते पर झूलना पड़ा। हमने भी काले कपड़े पहनकर सोग मनाया।

जनवरी 1931 को ढोलवह (होशियारपुर) में एक विशाल जनसभा हुई। उसमें प्रिंसिपल छबीलदास, डॉ. कज़लवाश, डा. गोपीचन्द भार्गव तथा श्रीमती जीता देवी भी सम्मिलित थीं। उस सभा में उन्होंने जो भाषण दिया उसमें यह वाक्य ज़ोरदार शब्दों में कहा–'हुण अंग्रेजां दा धियाड़ा ढिग्गा पर है' अर्थात् अंग्रेज़ सरकार का सूर्यास्त होने वाला है। इसी पर उन्हें कैद कर लिया गया और धर्मशाला ले जाकर बन्दी बना दिया। दस महीने तक मुकद्दमा चला, परन्तु अंग्रेज वकील "ढिग्गा पर ध्याड़ा" का सही अनुवाद न कर सका। अतः उन्हें आदर सहित रिहा कर दिया गया था।

दृढ़ निश्चयी कांशीराम अपने सत्याग्रह के मार्ग पर निर्भीकता से निरन्तर बढ़ते रहे। उन्होंने पहाड़ के ग्रामीणों, खेतिहर मज़दूरों का मार्ग भी प्रशस्त किया। अनपढ़-दिशाहीन युवक-युवतियों को राष्ट्रीयता के प्रति प्रेरित किया। उस समय के समाज में स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। परदा-प्रथा का विरोध किया। इस आन्दोलन को सफल बनाने हेतु अपनी भतीजी रामरक्खी को अपने साथ लिया। वे जनजागरण का जयघोष करते और गाते फिरते—

"इन्हां पहाड़ियां दी मारी गई मत्त लोको!
उजड़ी डोगरे देस जाणा।
परदेसां दे लोकी जागी उट्ठे,
साढ़े कांगड़े दे लोक खूब सुत्ते,
इन्हां बड्ढेआ अपणा नक लोको।
उजड़ी डोगरे देस जाणा॥
हुण मन्नो गलाया कांशी दा
डर रक्खो ना तुसां फांसी दा
असां लैणा सुराज झट लोको।
फिर बस्सी कांगड़ा देस जाणा।"

अर्थात्– पहाड़ी लोगों की तो मति भ्रष्ट हो गई है। डोगरा देश उजड़ जाएगा। दूसरे प्रान्तों के लोग जाग उठे हैं। हमारे कांगड़ा-वासी अभी सोए पड़े हैं। इन्होंने अपनी नाक कटवा दी है। अब भी कांशी का कहना मानो। फांसी पर लटकने का भय मत खाओ। शीघ्र ही हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे। तब कांगड़ा देश बस जाएगा।

उनके त्याग तथा स्वतंत्रता चेतना कार्यों से प्रभावित होकर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें "पहाड़ी गाँधी" कहकर संबोधित किया था। इस संबोधन से उनके व्यक्तित्व

पर ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव हुआ कि वे महात्मा गाँधी के सत्याग्रह को अपनाते हुए लोगों से शान्तिपूर्वक आन्दोलन चलाने का आग्रह करने लगे। इस चेतना की मस्ती में उन्होंने घर-बार और कारोबार सब कुछ त्याग दिया था।

स्वतंत्रता-संघर्षकाल में वे धर्मशाला, गुरदासपुर, लाहौर, मुलतान, लायलपुर, फिरोज़पुर और अटक की जेलों में बन्दी बनकर यातनायें सहते रहे। उनकी इस सफर की कहानी उनके काव्य में बिखरी पड़ी है। प्रो. पराशर लिखते हैं- वे अपने जीवनकाल में सात सौ तीस दिन जेल में रहे। ऐसे अवसर पर उन्हें जेल से बाहर न किसी से मिलने की आज्ञा थी, न कुछ लिख भेजने की। उस समय कैदियों को जेल में पोस्टकार्ड मिलते थे। सज़ा की स्थिति में उनसे भी इन्कार हो जाता। लोहे के दो बर्तन मिलते- एक खाना खाने के लिए, एक पानी पीने के लिए। शौचादि के लिए मिट्टी के दो बर्तन दिए जाते जो दिन भर कोठरी में पड़े रहते। ऐसी कोठरी आकार में 8 × 6 फुट की होती थी। स्वतंत्रता सेनानियों को दिनभर चक्की पीसनी पड़ती। कैदियों के गले में तख्ती पड़ी होती और 'तख्ती परेड' में ही वे परस्पर मिला करते।'

सन् 1940 में सविनय आज्ञा भंग आंदोलन शुरू हुआ। बाबा जी ने कांगड़ा के गाँव-गाँव में घूमकर ठीकरी बजाकर अपनी कविता गाते हुए स्वाधीनता संग्राम का आह्वान करते हुए जनजागरण किया। उस समय उनका यही नारा था—

''असां वतने जो आजाद कराणा है
गुलामी दा कफ़न फाड़ी कने।''
उन पर जितने ज़ुल्म हुए उन्होंने उतने ही ऊंचे स्वर में गाया—
''अंग्रेजां जितना अंधेर मचाया,
असां उतना ही जाल बछाया।
फिरंगियां जो भी चाल चल्ली,
असां उसने रंग जमाया।
रंगे ने तरंगा बनाया
असां कदी लहराना है
कांशी, औणा जमाना है।''

अर्थात्- हमने गुलामी का कफ़न फाड़कर अपनी धरती को आज़ाद कराना है। अंग्रेज़ों ने जितनी सख्ती की, हमने स्वतंत्रता का उतना ही जाल बिछा दिया। फिरंगियों ने जो भी चाल चली, हमने उसी में अपना रंग दिखाया। उस रंग से तिरंगा बनाया कांशीराम! वह समय ज़रूर आएगा जब हम उसे लहराएंगे।

सन् 1916 से 1943 तक देश सेवा और आज़ादी की लड़ाई के अतिरिक्त अन्य कोई व्यवसाय नहीं किया। उन्होंने पार्टी से भी किसी प्रकार की सहायता नहीं ली। परिवार की पैतृक संपति डिग्रियों और कुर्कियों में समाप्त हो गई। उन्हें जब-जब सज़ा हुई तो जुर्माना भी होता रहा जिसकी वसूली में जायदाद कुर्क होती रही या उन्हें कोई वस्तु या

सम्पति गिरवी रखनी पड़ी। अंग्रेज़ी सरकार का आतंक इतना था कि कोई भी व्यक्ति उनकी आर्थिक सहायता करने का साहस नहीं कर पाता। बताते हैं कि उन्होंने कांगड़ा से दूर कुसुम्पटी (शिमला) में भी जाकर दुकानदारी की परन्तु कुर्कियों ने वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा। जीवन में ग्यारह बार जेल गए। इस प्रसंग में जगदीश चन्द्र साठे के ये शब्द कितने सटीक हैं—

"कांशीराम ने होरनै गल्लैं पर बी बशक्क कलम चुक्की होग, पर उस कवि दी डोगरी-साहित्य गी जेहड़ी अमर देन थ्होई, ओ सुतन्तरता संग्राम च रची-पची दी कवता ही। डोगरी दे कुसै साहित्यकार ते कवि ने उस अजादी दी लड़ाई आस्तै, लोकैं गी ओदे च आई शामल होने आस्तै डुग-डुगी नेईं ही बजाई। उस महान युगा दे महान कारनामें च इक्कलें गै जेह्ड़े सुर कांशीरामं होरें चुक्की कड्ढे है, ओह्दे लई डोगरी साहित्य हमेशा लेई अपना सिर फख़र कन्ने ते गर्व कन्ने उच्चा रखी सकग, ते अपने-आपा च समानत होएदा बुज्झग।" (शीराज़ा, सितम्बर 1988, पृ० 39)

अर्थात्- कांशीराम ने और विषयों पर भी बेशक कलम उठाई होगी, परन्तु उस कवि की जो डोगरी साहित्य को अमर देन मिली, वह स्वतंत्रता संग्राम में रची-पची कविता थी। डोगरी के किसी साहित्यकार और कवि ने उस आज़ादी की लड़ाई के लिए, लोगों को उसमें सम्मिलित होने के लिए डुग-डुगी नहीं बजाई। उस महान युग के महान कारनामें में जो अकेले सुर कांशीराम ने उठाए, उनके लिए डोगरी साहित्य सदा के लिए अपना सिर स्वाभिमान के साथ ऊँचा रख सकेगा और स्वयं को सम्मानित समझेगा।

सन् 1942 में उन्हें अन्तिम बार जेल हुई। इस बार की जेल, यातना भरी रही। आज़ादी से विमुख करने तथा क्रान्तिकारियों के रहस्य पाने हेतु जेल अधिकारी उन्हें बोरियों में बन्द करके पीटते। परन्तु उन्होंने अपने साथियों, अपने राष्ट्र और अपने प्रण से विश्वासघात नहीं किया। जेल की असह यातनाओं से अस्वस्थ हो गए परन्तु रिहाई नहीं मांगी। अंततः बीमारी की स्थिति में उन्हें फिरोज़पुर जेल से रिहा कर दिया गया। घर लौटने पर फिर वही गीत, वही बातें, वही मस्ती रही, परन्तु उपयुक्त उपचार के अभाव में राष्ट्र सपूत कांशीराम आज़ादी की सुबह देखने से पहले ही चल बसा।

साहित्य

अपने जीवन काल में बाबा कांशीराम एक गीतकार के रूप में चर्चित रहे। उनके गीतों तथा भजनों में पहाड़ी, डोगरी, पंजाबी-दोआबी, हिन्दी तथा उर्दू के शब्दों का सहज प्रयोग होता, अतः लोग उन्हें चाव से सुनते और गुनगुनाते। उन्होंने आज़ादी के संघर्ष का शंखनाद अपने गीतों के माध्यम से ही किया था। सभा-सम्मेलनों में वे गद्य की अपेक्षा पद्य में ही बात करते। उनके छोटे पुत्र स्वायाराम वैद्य के अनुसार- ''वे एक अध्ययनशील व्यक्ति थे। उन्होंने प्राईमरी तक उर्दू-फारसी ही पढ़ी थी। उन्हें शेख सादी की दो काव्य रचनायें बड़ी प्रिय थीं- 'गुलिस्ता ने-सादी' और 'बोस्तां ने-सादी'। उन्होंने धार्मिक साहित्य भी पढ़ा था, विशेषकर गीता। उन्हें बचपन से ही गाने का शौक था। उन्होंने पहली कविता ''निक्के-निक्के माहणुआ जो दुक्ख बड़ा भारी'' सन् 1920 में रची थी और मृत्यु पर्यन्त निरन्तर लिखते रहे।'' बाबा कांशीराम पंजाबी के समकालीन प्रसिद्ध कवि लालचन्द 'फलक' के काव्य से विशेष रूप से प्रभावित रहे।

हिमाचल प्रदेश में भाषा एवं संस्कृति विभाग तथा अकादमी की स्थापना के बाद पहाड़ी के रचनात्मक साहित्य के प्रकाशन के साथ ही उनका नाम चर्चा का विषय बना। सर्वप्रथम डॉ० बंशीराम शर्मा ने सोमसी (त्रैमासिक पत्रिका) के अक्तूबर 1976 के अंक में, साहित्यकार परिचय स्तंभ में ''पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम'' के साहित्य का परिचय दिया और पाठकों तथा साहित्यकारों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया। उसमें उन्होंने लिखा है- ''जेल में बिताए अपने जीवन में लगभग पाँच सौ कवितायें तथा आठ कहानियाँ लिखीं। पहाड़ी से उनका अगाध प्रेम उन्हें वर्तमान पहाड़ी भाषा का मुख्य साहित्यकार सिद्ध करता है।''

सन् 1980 में हिमाचल प्रदेश भाषा-संस्कृति अकादमी ने डाडासीबा में उनका प्रथम जयंती समारोह आयोजित किया। उसी में स्व० स्वर्णकान्ता 'प्रेम' के माध्यम से उनके पुत्र स्वायाराम से मेरी भेंट हुई। उन्होंने मुझे उनकी 22 कवितायें सुनाई थीं। उनमें 'मेरा जीण बीतया सारा',' पहाड़-पहाड़ी', 'निक्के-निक्के माहणुआं जो दुख बड़ा भारा', 'उजड़ी कांगड़े देस जाणा', 'मूहूंडा गिला होई गिया', 'ओ झुंड कडणा मेरे ते', 'अग्गे पिच्छे नजर घुम्मदी' आदि कवितायें उल्लेखनीय लगीं। ये रचनायें प्रयोगवादी काव्यधारा के अनुरूप प्रवाहपूर्ण तथा अर्थ सौंदर्य भरी थीं। तभी से इनके साहित्य से जुड़ने की इच्छा बलवती होती गयी।

उस समय अविभाजित पंजाब में देवनागरी लिपि का व्यवहार नाममात्र था। अरबी,

फारसी मिश्रित उर्दू का व्यवहार था। बाबा कांशीराम ने भी सारा साहित्य उर्दू लिपि में लिखा है जो उनके छोटे पुत्र स्वायाराम वैद्य के पास सुरक्षित है। उन्होंने उसका देवनागरी में बड़े मनोयोग से लिप्यान्तरण किया है। उनकी चुनी हुई 63 कविताओं का संकलन "पहाड़ी सरगम" के नाम से वर्ष 1985 में प्रकाशित हुआ था। इसी पुस्तक में जीउणी (जीवनी) में स्वायाराम वैद्य ने लिखा है— "अज पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम होरा" रा पहला सुर, इकसौ त्रै पृष्ठ- पहाड़ी कविता रा संग्रह- तुसां जो भेंट करदेयां मिन्जो मती प्रसन्नता होआ दी कने मने च संतोष होआ दा जे मैं अपणे पितृऋण ते किछ दुहार चुका दा ए। आस ए लेखकां कने पाठकां री रुचि जागगी कने बाबा होरां रा दुआ सुर बी सताब्बी सबना सामने आँगा।"

अर्थात्- "आज पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम जी का कविता संग्रह, पहला सुर एक सौ तीन पृष्ठों में आपको भेंट करते मुझे अति प्रसन्नता हो रही है और मन में एक संतोष हो रहा है कि एतद् द्वारा पितृ-ऋण चुका रहा हूँ। आशा है लेखकों और पाठकों में रुचि जागेगी तो बाबा जी का दूसरा-सुर भी शीघ्र ही सबके सामने आएगा।"

"पहाड़ी सरगम" में संकलित निक्के-निक्के माहणूआं जो दुःख बड़ा भारा, समाज नी रोया, अक्खर कियां बणदे, सच्चाईया जो मौता ते कोई डर नी, नौक्खी गल, भेत खुली गेया, उजड़ी कांगड़े देस जाणा, मेरा स्नेहा भुक्खेयां नंगेयां जो, जीण क्या है भाई, ना कर गल्लां मुण्डूआ, कांशी रा सुनेहा, मेरी कैद दुक्खां आली, फांसी जो जप्फी पाई, निकड़ी जिंदड़ी दुख हजार बो, औणा कने जाणा, बड़ी वेद्दण, देस परमेसरा किंह्या बसणा, चरखा, उपमा जवानी री, छिंगू गुड़ेदा, टोटकू सिर्गटे दा, बेबस बब्ब, भारत री नारी, पंज चिठियां, मूंह्डा गिल्ला होई गेया, गोंएं-गोंएं जायां ओ मटयारे, तेरे खुल्ले दुआरे सामने, औक्खी ममता, दुःखे रे मने कोई रैह्म नी होन्दा, अग्गे पिच्छे नज़र घुम्मदी, हिन्द अजाद होणा आदि कवितायें समकालीनता को स्वर देती रचनायें हैं। हिम भारती विशेषांक मार्च-जून 1986 में भी "कुणाले दी कहानी कांशी दी जबानी (444 पंक्तियां), नाने दी कहानी, कांशी दी जबानी (190 पंक्तियां), नौखी गल, दोस्तां दी महरबानी, आज़ादी हमने कैसे लेनी, न सतजुग न कलजुग, चश्मां, अटक जेल का हाल, तीन ताल, तू मिंजो दसगा उसकी (सन् 1921 की रचना), सात सौ तीस दिन कैद (95 पंक्तियां) मुलतान जेल बारक नं॰ 14, आदि काव्य कथायें तथा कवितायें संकलित हैं। इनके द्वारा उनका कविमानस तथा काव्य-शिल्प सहज रूप से दृष्टिगोचर होता है।

उनकी कविताओं में 'अग्गे पिच्छे नजर घुम्मदी' 118 पंक्तियों की छन्द मुक्त कविता है। यह उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना कही जा सकती है जिसमें उनका चिन्तन तथा काव्य कथा-गठन कुशलता का संकेत भी मिलता है जो उनकी काव्य-कहानियों में विकसित हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने "बाबा बालकनाथ से फरियाद" हिन्दी उपन्यास भी लिखा था। इसका प्रकाशन क्रमशः हिमप्रस्थ (1984-85) तथा हिमभारती (1986) में हुआ जिससे पाठकों तथा लेखकों को उनकी उपन्यास रचना कुशलता का बोध हुआ।

तत्पश्चात् उनके साहित्य की चर्चा बढ़ती गई।

अप्रैल 23, 1984 के दिन ज्वालामुखी (कांगड़ा) में भारतीय डाक टिकट विभाग द्वारा उनकी स्मृति में डाक टिकट जारी करने का भव्य समारोह आयोजित किया गया। इसी अवसर पर हिमाचल प्रदेश भाषा-संस्कृति अकादमी की ओर से एक फोल्डर बाँटा गया। उसके अनुसार— "बाबा कांशीराम का साहित्यकार के रूप में सर्वोच्च स्थान है। उन्हें वर्तमान पहाड़ी का प्रमुख साहित्यकार मानना अतिश्योक्ति नहीं होगा।"

प्रो. रामनाथ शास्त्री ने इनके साहित्य की चर्चा करते हुए लिखा है— "बाबा कांशीराम द्वारा रचित समस्त गीत-कवतां उपलब्ध नेई होने पर बी उंदियां लगभग 80-90 रचना सुरक्षित न। इंदे च मतियां सारियां रचना ते डोगरी-पहाड़ी भाशा च गै रचियां गेइयां हियां। किश रचना ऐसियां वी हैन जिन्दे च उनें सरल जनेही हिन्दी भाषा दा प्रयोग कीता दा ऐ।"

अर्थात्-बाबा कांशीराम द्वारा रचित सभी गीत-कवितायें उपलब्ध नहीं होने पर भी उनकी 80-90 रचनायें सुरक्षित हैं। इनमें अधिकांश रचनायें डोगरी-पहाड़ी भाषा में रची गई हैं। कुछ ऐसी रचनायें भी हैं जिनमें उन्होंने सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है।

-आजादी दी लड़ाई दा लोकसेना पति पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम

(जीवन ते साधना, डोगरी संस्था जम्मू, पृ० 19, सन् 1986)

उनके साहित्य का सही-सही संपादन एवं प्रकाशन पहाड़ी-डोगरी साहित्य-सृजन परंपरा बोध हेतु एक युगीन तथा सामयिक आवश्यकता है।

सामाजिक चेतना के कवि

बाबा कांशीराम जिस क्षेत्र में जन्मे, पले, युवा हुए वहाँ की प्राकृतिक तथा सामाजिक अवस्थाओं से घुले मिले थे। साधारण परिवार से थे, अत: वे उन सारी स्थितियों' से गुज़रे जो उस समय का आम आदमी भोग रहा था। शटलवर्थ ने अपनी सैटलमैंट रिपोर्ट में लिखा है- 'समूचे क्षेत्र में खेती वर्षा पर निर्भर थी। वहाँ के लोग मालिया भी जिन्स (अनाज) के रूप में देते। उनसे कई प्रकार की बगारें और नजराने लिए जाते। समय पर वर्षा न होती तो अकाल पड़ जाता।' हंडरसन सैटलमैंट रिपोर्ट में भी ऐसा ज़िकर है - ''लोगों का जीवन अधिकतर घास, लकड़ी इकट्ठा करते, ढोर-डंगर चराते और बोझा ढोते समाप्त हो जाता। दैनिक उलझनों और मजबूरियों से जूझते इन लोगों की समझ भी जाती रहती।'' बाबा कांशीराम ने अपनी अनेक कविताओं और गीतों में इन स्थितियों को उजागर किया है।

''घा लकड़िया डंगरयां मत मारी।
बोझ चुक्क अक्कल, हिम्मत हारी॥''

अर्थात्-घास, लकड़ियाँ इकट्ठा करते, ढोर-डंगर चराते अक्ल मारी गई है। बोझा उठाते-उठाते समझ तथा हिम्मत हार गई है। गरीबी का वर्णन करते हुए तो इतना कह उठे हैं—'पेट भर रोटी नहीं मिलती। परिवार का पेट खाली है। यह सोचते-सोचते नींद नहीं आती। कभी सरहाने सोते हैं तो कभी पांयते की ओर। पैसा गांठ में नहीं अत: कोई चारा नहीं चलता।' उन्हीं के शब्दों में-

''निक्के-निक्के माहणुआं जो दुक्ख बड़ा भारा,
मिलदी नी रोटी, कियां होणा गुजारा?
खाली पेट टब्बरे दा, नींद नी औंदी,
कदी सरहाणे सौंदे, कदी सौंदे पौंदी,
पैसा नी पल्ले मेरे, चलूले नी चारा॥''

दो जून रोटी का जुगाड़ करने के लिए युवा लोगों को प्रवास पर जाना पड़ता। दूर पहाड़ों या मैदानों में मज़दूरी या नौकरी ढूंढनी पड़ती। वर्षों बाद किसी उत्सव या कारज के बहाने अपने परिवार से मिलने आते। पर पुन: काम पर लौटना इनकी मजबूरी होती। वे जब परिवार से विदा लेकर चलने लगते तो बच्चे उनकी टांगों से लिपटते और उनके साथ चलने की ज़िद करते। कांशीराम के कवि ने ऐसे कारुणिक दृश्य देखे और भोगे थे जो उनकी कविता में यूं मुखर हुए :

''नां कर ओ मुन्नुआ! गल्लां कन्ने जाणे दियां।
मैं जाणा सताबी,
औणा तेकी बाजी लियोणी ओ।
छैल-छैल कपड़े, काले बूटां दा जोड़ा
मुहें ने बजाणे आला बाजा
बटणा वाली फतूही लियाई दिहंगा ओ।''

कितना मार्मिक होता होगा ऐसा दृश्य जब बच्चा नौकरी पर लौटते पिता की टांगों से लिपटता साथ जाने का हठ करता है। वह इतना ही कहकर अपने मन को ढाढ़स बंधाता है, बच्चे को बहलाता है- ''अब जब छुट्टी आऊंगा तो तेरे लिए मुँह से बजाने वाला बाजा तथा पहनने को बटनों वाली बास्कट लाऊँगा।'' इस प्रकार बच्चे को फुसलाकर उससे पीछा छुड़ाना तो सहज है परन्तु उसकी टीस जो अन्तस्तल तक धसती चली जाती है, वह उसे प्रवास में हर समय कुरेदती रहती है।

कृषि के लिए वर्षा पर निर्भर खेतिहरों पर जब भूमि मालिक अत्याचार करते, हाकिम अनेक प्रकार से शोषण करते तो उनके प्रति कांशीराम का कवि मानस मानवीय संवेदना से उत्तेजित हो उठता। उनकी कलम से विद्रोह के स्वर फूट पड़ते। उनकी कविता ''मेरा सुनेहा भुखेयां-नंगेयां जो'' इन्हीं भावों से भरपूर है-

''कुस बेले तिक्कर
इक्की रोटिया दे टुकड़े ताईं
कुत्तुए दियां लीरां ताईं
झक्खां मारहगे ओ।
दस्सो! नाजे खोही कने लेई जान्दे मुजारयां ते
जेहड़े दिन-रात मिहणत करदे भुक्खे पेटे रेई के,
फसलां पकदियां तां बी भुक्खे
फसलां लांदे तां वी भुक्खे
टुकड़े नी मिलदे उनां जो सुक्के
दस्सो! कुस बेले तिक्कर
ऐह दस्तूर रेंहगे।.
कम करदे
ओह भुक्खे मरदे
बेहल्ले रैहन्दे
ओ रज्जी रोटियां खान्दे
ऐह/ दस्तूर हुण नी चलणा॥''

(पहाड़ी सरगम पृ० 14)

उन्होंने ढोल पीटकर बार-बार कहा कि मुजारा प्रथा समाज के लिए अभिशाप है।

जब तक यह प्रथा रहेगी, पहाड़ी लोगों में प्रगतिशीलता की संभावना कैसे बढ़ेगी। जिन लोगों की आयु रोटी और कपड़े की सोच में ही बीत जाती है, वे जीवन के सौंदर्य को क्या भोगेंगे ? यही पीड़ा इस कविता की मूल संवेदना है। ''कब तक रोटी के टुकड़े की खातिर, कुर्ते की लीर-लीर के लिए, झक्ख मारते रहेंगे- बताओ! यह कैसा दस्तूर है ? जो दिन-रात भूखे पेट रहकर भी परिश्रम करते हैं उन किसानों से फसलें छीनकर ले जाते हैं। बताओ! ऐसा दस्तूर कब तक रहेगा। जो काम करते हैं वे भूखों मरते हैं। जो निकम्मे रहते हैं वे पेट भर कर खाते हैं। कांशीराम कहता है यह दस्तूर अब नहीं चलेगा।''

इस देश के काश्तकार की स्थिति ऐसी रही है, अब भी है। कवि ने इस यथार्थ को निकट से देखा है। वह उन लोगों के मध्य जिया है जिनके चेहरों पर यह सब साफ-साफ लिखा होता है। परन्तु आश्चर्य यह है कि यह सब कुछ उन्हें नहीं दिखाई देता जो इसके लिए ज़िम्मेदार हैं। उनके लिए तो ऐसा जीवन भाग्य की देन है, जिसे उन्हें जीना है, भोगना ही है। समाज की घोर दरिद्रता का वर्णन 'समाज नी रोया' कविता में यूं मिलता है:-

मां भुक्खी ए / बच्चा भुक्खा ए,
तां दुध कुतू / बच्चा रोंह्गा
तां ममता मारी / दुध दिहंगी
दुध नी आया ममुए / बच्चा रोणा लग्गा,
मां तिसजो पुचकारणा लग्गी
अपणे मुहें कन्ने / उहदा मूंह लगाई दित्ता
बच्चे जाणेया एह् मम्मू ए
तिसजो चूंघणा लगी पेया
पर उत्थू दुध कुतू ?
फिरी रोणा लग्गा। मां भी रोणा लग्गी
पर म्हारा समाज नी रोया।

(पहाड़ी सरगम, पृ० 3)

अर्थात् - 'माँ भूखी है। बच्चा भी भूखा है। दूध कहाँ? बच्चा तो रोएगा ही। स्तन में दूध नहीं आया। बच्चा रोने लगा। माँ पुचकारने लगी। अपने मुँह से उसका मुँह लगा दिया। बच्चे ने जाना यह मम्मू है। परन्तु उसमें दूध कहाँ? फिर रोने लगा। माँ भी रोने लगी। परन्तु हमारा समाज नहीं रोया।"श्रमजीवी पहाड़ी स्त्रियों की जीविका तथा ममता के मध्य कराहती, सिसकती जिन्दगी और द्वन्द्व भरी मानसिकता को साकार करना ही तो कवि का अभीष्ट रहा है। महाकवि निराला ने इलाहाबाद के पथ पर भारत की विधवा को जिस विवशता भरे द्वन्द्व में देखा, प्रस्तुत कविता में बाबा कांशीराम भी संवेदना के उसी धरातल पर सोचते-कहते महसूस होते हैं।

पराधीनता के युग में सरकारी आर्थिक नीतियों से पहाड़ी समाज की कमर टूट रही थी। स्थानीय हाकिम भी अनेक प्रकार का आतंक फैलाते शोषण करते। समय पर मालिया

न दे सकने पर उनसे जुर्माना भी वसूल करते। परिणामत: कृषि-श्रम से जो कुछ कमाते हाकिम उठा ले जाते और वे मूक बने कवि वाणी में कहते :

"रजके नी खादी रोटी, भुक्ख ने मारा
सरकार डराए सानूं, हाकम भी खाए सानूं
जैलदार, नम्बरदार, होर चौकीदार
मालिया न पूरा हुन्दा, होर-होर बधाई जांदा।"

"निक्के-निक्के माहणुआं जो दुक्ख बड़ा भारा" कविता में ऐसे दुख-दर्द भरे जीवन का वर्णन मिलता है। वास्तव में बाबा कांशीराम के मन में अनेक दर्द थे। पहाड़ी निर्धन जीवन का दर्द, अंग्रेज़ सरकार, जैलदार तथा नम्बरदार जैसे हाकिमों के शोषण और आर्थिक उत्पीड़न का दर्द, देश को आज़ाद कराने का दर्द, अपनी घर-गृहस्थी का दर्द, जेल-यातनाओं का दर्द। परन्तु उन्होंने ये सारे दर्द सहे, गट-गट कर पिए और अन्त तक एक साहसी, निर्भीक सेनानी की भांति जीए। जो कुछ भोगा उसे ही काव्य का विषय बनाया। इनका समूचा काव्य तत्कालीन युगबोध का काव्य है, युगचेतना भरा है। यथार्थ से जन्मा है। युग-धारा से जुड़ा है।

पहाड़ी समाज अस्पृश्यता के रोग से ग्रसित था। हरिजन समाज दूसरे धर्मों को अपनाने के लिए विवश हो रहा था। कल का पड़ोसी मित्र आज शत्रु बन रहा था। धर्म परिवर्तन का प्रवाह समूचे भारत को तोड़ रहा था। महात्मा गाँधी के अछूतोद्धार आन्दोलन ने कांशीराम के कवि को भी प्रभावित किया। उन्होंने इसे एक सामाजिक रोग बताते हुए इसके प्रति जागरूकता का सन्देश दिया। इसके दुष्परिणामों को जनता के सामने रखा :

"छुआछूत करो दूर सज्जनो।
नेईं तां हुंगे चकनाचूर मित्तरो।
हिन्दुआं नू ए घुण खान्दा
भाई अपना दूर होई जान्दा।
ओ ग़ैर कौमा बिच चला जावे
जानी बैरी स्हाढ़ा हो जावे
बार करे भरपूर सज्जनो"

(पहाड़ी सरगम-पृ० 62)

उन्होंने हरिजन समाज के उपकारों को एक-एक गिनाकर हमें कुछ सोचने-विचारने को विवश किया। "हमारी खातिर, चमार अपने हाथ से जूती बनाता है। उससे पैर को आराम मिलता है। जुलाहा कपड़ा बुनता है। तकिए के लिए रूई धुनता है। पत्तलें-दोने लगाता है। जुलाहे भाई कपड़े बुनते हैं। डोमने बांस की चंगेर (खुला पात्र) बनाते हैं जिनमें हम रोटियां डालते हैं।"

(पहाड़ी सरगम पृ० 63)

ऐसे भाइयों को दूर रखना, अछूत मानना महापाप नहीं तो क्या है ? लोक व्याप्त ऐसी रूढ़ियों, अंधविश्वासों, कुप्रथाओं को, समाज के ढोंगी स्वरूप को हिन्दू धर्म की विराटता और एकता के लिए एक खतरा बताया। समाज को सावधान किया। उन्होंने ऐसे अनेक भजन तथा गीत भी गाए जिनमें समाज को फिजूलखर्ची, बाह्य आडम्बरों से दूर रहने का सन्देश दिया। दैनिक खर्चे घटाकर, मोटे कपड़े पहनने तथा थोड़ी आय में भी सुखी जीवन जीने का मार्ग बताया। ऐसे अनेक भजन आज भी लोग सुनाते-गाते हैं :

"दुनियां करे पुकार अंखियां खोल जरा
अपणे खर्चे घट कर देणे
मोटे कपड़े, मोटे गहणे
फैशन चंगे सब छड देणे
तब होगा बेड़ा पार।"

वास्तव में पहाड़ी जीवन की दरिद्रता का मूलकारण अनपढ़ता थी। कांशीराम उस भोली और साधारण अज्ञानता के कुएं में डूबी जनता को जागृत करना चाहते। उनका दृढ़ विश्वास था—'जब मेरे पहाड़ के लोग वर्तमान स्थितियों को समझेंगे। तभी इनके जीवन में सुख तथा सौंदर्य आएगा।' इसलिए उन्होंने गाँव में पंचायत तथा शादियों में खर्चे कम करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। वे ज़ोरदार शब्दों में गाते फिरते—

"छड्डो हुण सोने दा गहणा / सादे कपड़े पाके रहणा
पिच्छों दुख कोई न सहना / काईम रहे घरबार
पिण्डां दी पंचायत बनाओ
अब मिल आपस में तुम जाओ
शादी का सब खर्च घटाओ / बस जाए घर-बार॥"

इसी प्रसंग में इनका "देस परमेसरा किह्यां बसणा" गीत इतना लोकप्रिय हुआ कि आज भी हिमाचल के पर्वतीय क्षेत्र के लोग उसे गुनगुनाते हैं। इसमें भी सामाजिक कुरीतियों, अनमेल विवाह, गहनों-कपड़ों पर व्यर्थ के खर्चे, रूखी-सूखी रोटी का अभाव आदि सामयिक समस्याओं पर तीखा व्यंग्य मिलता है। इस रचना में उनके भीतर का आक्रोश बौखला उठा था— "पहाड़ के लोगों की तो समझ ही मर गई है, ऐसी स्थिति में देश कैसे बच सकेगा। देश को विदेशी शासकों से मुक्त करने के लिए वहाँ की जनता में नयी चेतना, नया विश्वास, नयी सोच और उत्सर्ग की भावनाओं की ज़रूरत होती है। यहाँ तो समाज की हर रस्म खोटी है, बूढ़ों से अव्यस्क लड़कियां व्याह दी जाती हैं। स्त्रियों में गहनों-कपड़ों की भूख है, चाहे घर में सूखी रोटी का टुकड़ा न मिले। जख (यक्ष) देवता की मनसा से पुत्र पाने की लालसा में पीरों-वीरों की मढ़ियों में आस्था रखती हैं, ऐसे पिछड़े समाज का उद्धार कैसे हो सकता है, देश आज़ाद कैसे होगा? उन्होंने अपने काव्य में इस भाव को बार-बार दोहराया है—"जब तक समाज़ में नयी चेतना, नयी सोच नहीं

आएगी, तब तक देश को स्वतंत्रता प्राप्त करना संभव नहीं। आज समय आ गया है कि हम पुरापंथी रूढ़ियां त्यागें, नये युग की नयी चेतना को ग्रहण करें तभी सामाजिक उत्थान संभव होगा, देश आज़ाद होगा।"

बाबा कांशीराम सामाजिक चेतना को ही राष्ट्रीय चेतना का आधार मानते थे। समाज की जागरूकता में ही राष्ट्र की जागरूकता निहित रहती है। इस सत्य को उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर, आंगन द्वार जाकर सुनाया और सामाजिक जागृति फैलायी :

"पीलिआं अक्खां / सुक्केआं बुल्लां वालेओ!
उट्ठी खड़ोआ! इस अपणी दुनिया च
ओ झुंगियां च रहणे वालेओ।
काहलू तक इन्हां फसलां जो
लुटना सरमाया वालेआं?
काहलू तक इन्हां पिण्डां दिया छातियां पर
नचगे फाकेआं दे साए?"

अर्थात्- पीली आँखों, सूखे गालों वालो! उठो! जागो! दासता और निराशा भरी जिन्दगी त्यागो। झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वालो! ढेर सारी फसल बीजकर, हर रोज़ फाका करने वालो! कब तक लूटते रहेंगे, सरमाए वाले इन फसलों को? कब तक इन गाँवों की छाती पर, नाचते रहेंगे। फाकाकशी के साए।

समाज चेतना पूर्ण इस कविता में राष्ट्रीय संवेदना भी निहित है। कवि का मानना है कि जब तक समाज जागृत नहीं होगा, उसमें अपनी अस्मिता की पहचान नहीं आएगी, जब तक वह अपने कर्तव्य और अधिकारों को नहीं समझेगा तब तक वह इस नीच गरीबी से मुक्त नहीं हो सकता। उसका देश स्वतंत्र जीवन नहीं जी सकता। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम भाइयों को गाँधी का हुकम मानने का आग्रह किया। घर-घर में चर्खे की आवश्यकता पर बल दिया। तभी स्वराज प्राप्ति होगी। कांशीराम का कहना है कि अब यही धर्म विचारो, मन की घुंडियां खोलकर एकता का जीवन जीयो—

"असां धर्म विचारा। गलान्दा कांशी प्यारा
घुंडी दिला री खोल
घरें चरखे दी लोड़।"

(पहाड़ी सरगम-पृ० 34)

और "स्त्री शिक्षा" नामक कविता में तो यहाँ तक कह देते हैं :

"भैणो! कुछ होस संभाला
कैंह पुट्ठे रस्ते पेई गेइयां?
छड़ी दित्ती री पति री सेवा
जदूं अंग्रेजी पढ़ी गेइयां।"

(पहाड़ी सरगम-पृ० 24)

उन्हें अपने रहन-सहन, भाषा, व्यवहार, लोकाचार आदि से अति स्नेह था। सामाजिक-विकास की धुरी तो स्त्री ही है। जब तक उसका विकास नहीं होगा, जब तक उसमें राष्ट्रीय चेतना नहीं होगी, देश पराधीनता से मुक्त नहीं हो सकता। उनके रचित काव्य में- 'समाज नी रोया', 'निक्के-निक्के माह्णुआं जो दुक्ख बड़ा भारी', 'उजड़ी कांगड़े देस जाणा', 'मेरा सुनेहा भुक्खेयां-नंगेयां जो', 'ना कर गल्लां मुन्नुआं कन्ने जाणे दियां', 'कांशी रा सुनेहा', 'स्त्री शिक्षा', 'निकड़ी जिन्दड़ी दुक्ख हजार ओ', 'देस परमेसरा किह्यां बस्सणा', 'चरखा', 'छूत-छात करो दूर सजना' आदि रचनायें इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं।

9

आज़ादी के गायक

सामाजिक चेतना का शंखनाद करता बाबा कांशीराम का कवि तत्कालीन स्वतंत्रता-संवेदना से इतना प्रभावित हुआ कि घर-गृहस्थी को भूल कर देशोद्धार के गीत गाता राष्ट्रीय चेतना का नारा लगाने लगा। लाहौर में तत्कालीन राष्ट्रभक्तों के संपर्क से उनमें भी वैसा ही मतवालापन आ गया। परिवार की चिन्ता छोड़कर आज़ादी की लहर में समा गए। उन्हें जेल भी हुई। एक बार नहीं, बार-बार। वे वहाँ भी मौन तथा निष्क्रिय नहीं बैठे। वहाँ जो देखा, जो भोगा उसे काव्य में बांधते रहे। जेल-जीवन से जुड़ी कविता ''मेरी कैद दु:खां आली'' उनकी एक दस्तावेज़ी काव्य रचना है—

''मेरी कैद ए दुक्खां आली मुकदी नेईं
कमरा मेरा खड्ढों वाला
बाह्रों मारदे न ताला।
बेड़ी सिल लोहे वाली, टुटदी नेईं।
नंगे फरशे पर ही सोना
बारी-बारी आई के जगांना
निंद नी औनी, दिल घबराना
मेरी रात दुक्खां आलो मुकदी नेईं।''

(पहाड़ी सरगम पृ० 22)

मेरी दु:ख भरी कैद खत्म नहीं होती/ मेरा कमरा खड्ढों से भरा/ बाहर से ताला लगाते हैं/ हाथ-पाँव में भारी भरकम लोहे की बेड़ियां/ जो टूटती नहीं/ नंगे फर्श पर सोना पड़ता/ रात को सिपाही बार-बार आकर जगा जाते/ नींद नहीं आती/ दिल घबराता/ दले आटे की रोटियां/ मसर की दाल/ उसे कोई खाता, कोई फाकाकशी करता/ हम मिलकर हकूमत का स्यापा करते/ परन्तु गोदाम से यह दाल खत्म नहीं होती/ मैं कब बाहिर जाकर देस सेवा करूं/ हे दीनदयाल! अब तो कृपा करो/ मन के अंधकार में उजाला कर दो। कांशी कहता है मेरी पतंग की डोर टूटती नहीं। क्योंकि उसका मानस तो व्याकुल है। स्वतंत्रता की चेतना जगाने। गाँव-गाँव, घर-घर घूमने, व्यक्ति-व्यक्ति में आत्मोत्सर्ग की भावना जगाने के लिए। परन्तु जेल के भीतर रहकर यह सब कुछ संभव कैसे हो? ऐसी परबस स्थितियों में उन्हें अपना जीवन व्यर्थ-सा लगता। वे कह उठे थे—हे दीनदयाल! या तो देशोद्धार हेतु कार्य करने का अवसर दो या इस जीवन को मुक्त कर दो।

माटी के ऋण से उऋण होने की भावना से ओत-प्रोत है इनकी कविता जो पढ़ने-सुनने पर आत्मोत्सर्ग हेतु प्रेरित करती है :

''कुस कम्म तेरा रंग रूप
कुस कम्म तेरी जवानी
कुस कम्म तेरा इलम हुनर
कुस कम्म तेरी बलवानी
मरी ने देश की खातिर तूं
लब्बे न आज़ादी।''

उन पर एक ही जुनून सवार रहा और वे एक ही बात दोहराते रहते—

''आओ। रली-मिली सारे हिन्द आज़ाद कराइये।
नरक बनी गेआ देस असांदा, फिर तों सुरग बनाइये॥''

इनके काव्य में कवि और पाठक, युगचेता और जनता का सीधा संवाद मिलता है। वह उनके सामने अनेक प्रश्न उछालता है, पूछकर मौन नहीं होता, बल्कि बार-बार प्रश्न पूछता है और उत्तर मांगता है। संभवतया उनकी इस कविता-प्रक्रिया ने पहाड़ी जनमानस को स्वतंत्रता चेतना से भर दिया और समूचा पहाड़ उनके स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगा था—

''हिन्द आजाद होणा मित्रो!
असां गुलाम हुण नी रैह्णा!
बखरे-बखरे टोले बणाई
तिन रंगे हेठ आई
इनकलाबी नारा लगाई
मिली सुराज असां लैणा।

* * *

कैंहदा कांशी राम स्याहपोश
हुण बड्डेआं जो औंगा होश
छोट्टेआं जो आया हुण जोश
सदा इक जमाना नी रैह्णा।'

(पहाड़ी सरगम पृ० 96)

कांशीराम का जीवन स्वतंत्रता के उद्घोष को समर्पित जीवन था। देश के अन्य स्वतंत्रता सेनानियों की भांति इन्होंने भी तत्कालीन घटनाओं से प्रभावित होकर जो संकल्प लिए उन्हें साकार करने की राह पर शहीद हो गए। ''अग्गे-पिच्छे नज़र घुमादी'' शीर्षक कविता में भारतीय इतिहास के गौरव भरे पृष्ठों को दोहरा कर देशवासियों में आज़ादी की चाहत पैदा की। उन्होंने यह स्वर खेत-खलिहान, आँगन-द्वार, गाँवों-कस्बों में जाकर सुनाया—'कैसे जयचंद ने पृथ्वीराज चौहान से द्रोह किया, भारतीय वीर कैसे भारत के लिए

घातक बन गए, कैसे यह इतिहास उत्तरोत्तर दोहराता चला गया। किस प्रकार फिरंगियों की हस्ती बढ़ती गई, देशद्रोही उनसे मिलते गए और इसी संघर्ष में किस प्रकार एक नए धर्म का उदय हुआ, देश धर्म, देश-प्रेम की लहर कैसे बहने लगी। ज्वाला माई की अमिट ज्योतियों की भान्ति देशप्रेम की ज्वाला किस प्रकार समूचे देश में फैल गई। सन् 1857 के राष्ट्रीय जागरण विस्फोट में नाना, तांतिया, झांसी की रानी सब अमर हो गए —

"सहीदां रे लहुए री इकसी बूंदा
लखां गंगां खूने री बहियां
काशियें बी गोत्ता लाया
अपणा जन्म सुफल बणाया।
सन्यासियां आज़ादी री जंग लड़ी
हजारां शहीद, शहीद होई गेए।"

राष्ट्रीय संवेदना की मस्ती में वे लोगों को कुलजा माता की रक्षा का स्मरण दिलाते स्वतंत्रता संग्राम हेतु प्रेरित करते कहते—

"जिन्दड़ी लज नीं लाणी
इक बरी जम्मणा अम्मां/ बब्बे री लज्ज बचाणी
देश बड्डा कौम बड्डी
ऐह जिन्द अमानत उसरी
कुलजा मत्था टेकी कन्ने/ इन्कलाब बोलना
कांशी/ असां जेलां जाणा।"

अर्थात्– जीवन को लज्जित नहीं करना। मां ने एक बार ही जन्म देना है। बाप की लाज रखनी। देश बड़ा, कौम बड़ी है। यह जीवन तो उसी की अमानत है। कुलजा देवी को मस्तक नवाकर। इन्कलाब का नारा बोलना। कांशी! हमने जेल जाना। स्वतंत्रता-बलिवेदी पर न्योछावर होने वाले वीर सपूत ही उनके आदर्श रहे, उन्हीं के कारनामों से स्वतः प्रेरित हुए। जीवन में तप, त्याग ही चिर स्थायी हैं। जिस पथ पर अनेक कष्ट उठाने पड़ें, वही मार्ग हमें भी अभीष्ट है—

"साह आए न आए
न भरोसा जिन्दगानी दा-
ओही रस्ता जित्थू होर चली गै
ओ तां कमाई गै/ असां भी कमाना।"

उन्हें सांस के आने न आने की परवाह नहीं थी। उन्हें तो एक ही जुनून था, जिस मार्ग पर देशभक्त बढ़ते चले गए, उन्होंने जो बलिदान दिए, हमें भी अपने प्राण उसी मार्ग पर आहूत करने हैं।

स्वदेश प्रेम तथा स्वराज की भावना तो उनके लहू की बूंद-बूंद में रची-पची थी। उनके शब्द-शब्द में यही संवेदना थी, अक्षर-अक्षर का यही स्वरूप था- "वायदा स्वराज

भुली नी जाना।" उनके सिर पर तो आज़ादी पाने का भूत सवार था। वे सच कहने से कभी विचलित नहीं हुए। किसी संभावित कष्ट से भयभीत होकर अपने लक्ष्य से पीछे नहीं हटे। जीवन की सार्थकता सदैव उनके सम्मुख रही। वे अन्त तक इस सत्य के प्रति विश्वस्त रहे। सत्य, सत्य ही रहता है। उसे झूठ का कलंक ढक नहीं सकता। जीवन की सनातनता और अमरता निर्विवाद है। इसीलिए उन्होंने बार-बार कहा—

"सचाईया, मौता ते कोई डर नी
इस सचाईया जो मैं जाणदा
मिन्जो मौत नी छूंहदी।

* * *

मैं जगते कने प्यार कीता था
जीने दा संसार सच्चा पाया
हर दिन प्यार कीता। इस सच्चे जो मैं जाणदा
ऐहजो मौत नी छूहंदी।"

स्वतंत्रता-चेतना का जो जागृत रूप उन्हें लाहौर, अमृतसर आदि स्थानो पर देखने को मिला उतना "पहाड़" में नहीं। उन्होंने पहाड़ी में ऐसे अनेक गीत रचे जो निश्चेष्ट लोगों में प्रेरणा बने—

सारे देश दे लोकी जागी उठे
साढ़े देश दे लोकी खूब सुत्ते
इन्हां बड्या अपना नक लोको
उजड़ी डोगरे देश जाना।

* * *

नाम कांग्रेस दा सुणी खिसक जांदे
झोली चुक्कां दे हत्थ फस जांदे
कौमी नाम दा लड़दा सपूत लोको।

* * *

हुन मन्नो गलाया कांसी दा
डर रक्खो न तुसीं फांसी दा
असां लैणा सुराज झट लोको,
बस्सी डोगरे देश जाना।

अर्थात्-सारा देश जाग उठा। हमारे देश (क्षेत्र) के लोग खूब सोए हैं। इन्होंने अपनी नाक कटवा ली। डोगरा देश उजड़ जाएगा। कांग्रेस का नाम सुनते ही भाग जाते हैं। देशद्रोहियों के चंगुल में फंस जाते हैं। कौमी नाम का सपूत खूब लड़ता है। अब कांशी का कहना मानो। डर रखो न तुम फांसी का। हमने शीघ्र ही स्वराज लेना है। डोगरे देश ने बस

जाना है।

उस समय अनेक राज्यों में ऐसा स्वर 'समय का स्वर' बन गया था। जगदीश साठे लिखते हैं- उस युगा दी सोच ते सुभा5 आले लोक लोकें ही भलाई पासै गै रूज्झै रौहंदे हे। हरदत्त शास्त्री ते कांशीराम हुन्दी कविता च उयै इस सांझे रसा दा सुआद थ्होंदा ऐ। जेकर हरदत्त होरें जम्मू पासे भाख लाई ही ''किआं गुजारा तेरा होग डोगरआ देसा'' की जे समां बे मुहारें मूंह् जोरे बदलदा जा करदा हा ते लोक सुत्ते दे गै हे, तां कांगड़े पासे दा एदे शा बी मती सख्त बाज कांशीराम होरें लाई ही।''

उनका कवि तो मतवाला हो गया था। उसका एक ही सुर था, एक ही बोल था एक ही सवाल था-बस आज़ादी चाहिए। उसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े, भोगना पड़े, उसकी चिन्ता नहीं। वह तो गाता फिरता—

''असां जो इक पासे दी मौत चाहीदी ए
की सांझो फांसिया पुजाए
गोलियां कने उड़ाई दित्ता जाए
शाबास ए, कांशी।
तुसां मेरे लई रस्ता बनाई दित्ता।''

अर्थात्-हमें तो एक तरफा मौत चाहिए। चाहे फांसी पर लटका दो, चाहे गोलियों से उड़ा दिया जाए। कांशी! तुझे शाबास है, जो मेरे लिए मार्ग प्रशस्त किया। स्वतन्त्रता पाने की खुमारी का जनून उनके काव्य में ऐसा कहता फिरता—

''जिथनियां वि सखियां देई सको देई लेआ,
मेरी बोटी-बोटी नोची देआ
उन्हां जो समाने पासे फैंकी देआ
ताकि मेरे देसे दे उड़ने वाले पैन्छी
हुब्बे वतन की बोटियों से
अपणी भुख मटयायी लैण।''

अर्थात् - जितनी भी सजाएं दे सकते हो देना, मेरी बोटी-बोटी कर देना/ उन्हें आकाश की ओर फेंकना/ ताकि मेरे देश के उड़ने वाले पक्षी अपने प्रिय देश की बोटियों से/ अपनी भूख मिटा लें।

ऐसे भाव बोध से जुड़ी कविताओं में ''अग्गे पिच्छे नजर घुम्मदी'', 'भारत दी नारी', 'हिन्दिया जाग', 'छिंगू गुड़े दा', 'दिक्खा हिन्दू भाईयो!' 'चरखा', 'कौमी झण्डा', 'जिन्दाबाद हिन्द होए', 'टोटू सिर्गटे दा' आदि उल्लेखनीय हैं। उनका कवि आध्यात्मवाद, रहस्यवाद, मानवीय संवेदना, दु:ख-दर्द, विछोह, प्रेम-श्रृंगार, भूख-बेरोज़गारी की बात करता-करता देश की आज़ादी का राग अलापता जेल जाने, फिरंगियों को देश से बाहर निकालने, देश हित के लिए न्यौछावर हो जाने की वाणी दोहराता रहता।

मुक्त काव्य कथाकार

बाबा कांशीराम की सृजन कुशलता उनकी काव्य-कथाओं में मुखर हुई है। इनके जन्म शताब्दी समारोह पर, जो ज्वालामुखी (हि.प्र.) में दिनांक 23-4-1984 को आयोजित हुआ, वहाँ जो परिचय-पत्र बाँटा गया, उसमें इनके पुत्र वैद्य स्वायाराम ने आठ कहानियों का संकेत दिया था जो इस प्रकार हैं—

1. कुणाले दी कहाणी, कांशी दी जवानी
2. नाना दी कहानी, कांशी दी जवानी
3. बाबा बालकनाथ कने फरयाद
4. चारू कने रेशो
5. कुंजू कने चैंचलो
6. जुलकी कने शेरां
7. मेरा वीर चौरापा
8. प्हाड़िया कने चुगहालिया।

"कुणाले दी कहाणी, कांशी दी जवानी" 444 पंक्तियों की लम्बी कहानी है जो 12 खण्डों में बंटी है। "नाना दी कहानी, कांशी दी जवानी" आठ खण्डों में बंटी 190 पंक्तियों की काव्य रचना है। ये दोनों रचनायें हिम भारती (मार्च-जून 1986) पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम विशेषांक में प्रकाशित हुई हैं। अन्य काव्य-कहानियाँ अप्रकाशित हैं।

"कुणाले दी कहानी, कांशी दी जवानी" ऐतिहासिक कथानक की पृष्ठभूमि पर रची गई कहानी है। इसमें तप, त्याग, बलिदान, कर्तव्यनिष्ठा तथा नैतिक आदर्श को संस्मरणों के परदे पर उतारने का प्रयास किया है। शौर्य तथा रोमांच भरे इस कथानक को काव्य-कथा रूप में जिस कुशलता से बुना है उससे इनकी कथा-गठन शक्ति तथा काव्यशिल्प सृजन के सहज तथा उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। वे जब-जब जेल गए वहाँ निरन्तर लिखते रहे, खूब लिखते रहे। जो कुछ लिखा उसमें एक निश्चित उद्देश्य तथा सही दिशा रही। युगीन स्थितियों का सही बोध जो उनके भीतर द्वन्द्व पैदा करता रहा उसी को इन रचनाओं द्वारा कहने का प्रयास करते रहे। अतीत की इन आदर्श कहानियों के माध्यम से उन्होंने देशद्रोही भारतीयों के चारित्रिक-पतन को उकेरा है। उन्होंने यह समझानें का प्रयास किया कि परतंत्रता में जकड़ा, जी रहा, सिसक रहा भारत तभी आज़ाद होगा जब देश के नर-नारियों में कुणाल तथा कंचन जैसी सहनशीलता, कर्तव्यपरायणता, एकनिष्ठा और सत्य के

मार्ग पर चलने की आत्मोत्सर्ग भरी चेतना होगी। वे गाँव-गाँव घूमते ऐसी कहानियाँ गा-गाकर सुनाते और परतन्त्र जीवन से संघर्ष करने की प्रेरणा भरते। हिन्दी कवि तथा नाटककार जयशंकर प्रसाद ने अपने नाट्य साहित्य द्वारा जिस राष्ट्र-भक्ति और आत्मोत्सर्ग की भावना का आदर्श रखा वैसी ही चेतना बाबा कांशीराम की इन काव्य-कहानियों में मिलती है।

ऐसी काव्य-कथाओं की पृष्ठभूमि में इनकी यही सोच रही- भारतीयों का चरित्र उदात्त बने, देशहित के लिए निहित स्वार्थों, प्रलोभनों, पदोन्नतियों का मोह त्याग करें। उन्हें क्षणिक सुखों के लिए सनातन मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इसके लिए यदि फांसी के तख्ते पर भी झूलना पड़े तो गौरव समझना चाहिए। इसी राष्ट्रभक्ति भाव को उन्होंने रानी तस्यरक्षता तथा राजकुमार कुणाल के कथा-रूपक द्वारा समझाने का प्रयास किया। विमाता अपने ज्येष्ठ पुत्र की आँखों के सौंदर्य पर मोहित होकर विवेक खो बैठी और नैतिक मर्यादाओं को तोड़कर उससे प्रेम-प्रस्ताव करने लगी—

"मिन्जो बार-बार मां कजो गलान्दा" (मुझे बार-बार मां कहकर क्यों पुकारता है)—

"कुणाला! दिले देया प्यारेया बो।
मिन्जो मां न गलाया कर
ऐह सुणदेई कुणाले दियां अखियां खुली रही गईयां
जिहां पाणियें बिच फुलेया कमल
खिली रिहा ओ। खिली रिहा ओ!!"

कुणाल तो सिर से पांव तक पसीजता, सिहरता इतना ही कह पाता है—
"कैंह बणादी पापे दा भागी मिन्जो माए।"

अर्थात्- मां! मुझे पाप का हिस्सेदार क्यों बना रही हो।

काम वासना में विवेकहीन बनी रानी प्रतिशोध में जलती राजा से शिकायत करके कुणाल की आँखों को निकलवाने का आदेश दिलाकर ही चैन लेती है। परन्तु कुणाल ने इस आदेश को बड़ी सहजता से स्वीकार किया। उसने अपनी पत्नी को इस कृत्य की पृष्ठभूमि समझाकर धैर्य एवं निर्भीकता से जीने का आग्रह किया। सेनापति के यह बताने पर भी कि यह आदेश राजा का नहीं, बल्कि रानी तस्यरक्षता का है, परन्तु कुणाल का उदात्त चरित्र मुखर होता कह उठा—

"येह अक्खर चाहे कुसी दे
पर मोहर इस पर लग्गी है सम्राटे बापुए दी
तू अपणा फर्ज नभायां
मेरा दिल खुशियां भरेयां
कलेजा हत्थ भर बदगा

जे तू बापुए दिया आज्ञा कने
अखियां मेरियां ओ
जिण्हां राणियां अम्मा दा मन मोहया कडी, दिहंगा॥"

अर्थात्-'ये अक्षर चाहे किसी के भी हों परन्तु इन पर तो मेरे पिता सम्राट की मोहर लगी है। तुम अपना फर्ज़ निभाओ! मेरा मन खुशी से भर जाएगा, हाथ भर कलेजा बढ़ेगा यदि तू उन आँखों को निकाल देगा जिन्होंने मेरी माँ का मन मोह लिया।' कालान्तर वही कुणाल जब ज्ञान प्राप्त कर उसी राज्य में धूनी लगाकर बैठा तो रानी उसे देखती भौंचक्की रह गई। कुणाल को आवाज़ दी तो उसने माँ को पुकार कर टटोलते हुए उसके चरण छूने का प्रयास किया। तब भी रानी के मुँह से यही शब्द निकले—

"मैं था सोचया/ तेरियां अक्खां कडी कने तेरे सोहणे मुखड़े जो/
बुरा बणाई दिंहगी पर क्या हां दिखदी/ एह मेरी भुल थी तां तेरे
ते मैं हारी हां।"

अर्थात्- मैंने सोचा था तेरी आँखें निकलवाकर तेरे सुन्दर मुख को कुरूप बना दूँगी। परन्तु क्या देखती हूँ। यह मेरी भूल थी। मैं तेरे से हार गई।

जब राजा को सत्य का बोध होता है तो वह रानी को दण्डित करने का आदेश देने लगता है। परन्तु पुत्र कुणाल पिता-सम्राट से कहता है :

"ऐ मेरी अम्मा, मेरी गुरू ए
मिन्जो इसने चानण दित्ता
मैं तेरियां मिणता करदा,
तेरेयां पैरां पौन्दा।"

यह मेरी माँ है, मेरी गुरू है। इसने मुझे ज्ञान दिया। मैं आपकी मिन्नत करता हूँ। पाँव पकड़ता हूँ। ऐसा मत करें। वास्तव में दुर्जन या शत्रु को क्षमा करके सज्जन या मित्र बनाने की भारतीय परम्परा सनातन रही है। यही जयशंकर प्रसाद में मिलती है और बाबा कांशीराम की इन कहानियों में भी वही स्वर प्रधान रहा है।

कथा-भावों को सहज भाषा, सहज शैली, सहज अप्रस्तुत विधान में व्यक्त करना इनकी काव्य-शैली की विशिष्टता है। भाव-व्यन्जना में भाषा की गतिशीलता आद्योपान्त एक ही जैसी है, जो स्वरूप में व्यावहारिक है, सर्वग्राह्य है।

इसी प्रकार "नाने दी कहानी, कांशी दी जवानी" ऐतिहासिक रोमांच भरी काव्य-कथा है। देश भक्तों को कितनी मुसीबतें आईं, उन्होंने आज़ादी की खातिर क्या-क्या नहीं झेला, इस काव्य-कथा में कहा गया है। स्वतंत्रता संग्रामी नाना के जीवन में घटी एक सत्य कथा पर आधारित है, यह रचना। फिरंगियों ने उनका पता देने वाले को इनाम घोषित किया था। इसी लोभ में देशद्रोही उनके पीछे लगे थे। वे छिपते-छिपाते एक रात ऐसे घर में जा पहुँचे जहाँ केवल एक महिला थी। वह उनका अता-पता पूछती है तो नाना कवि-वाणी में

यूं कहते हैं :

''एह मत पुच्छैं मेरिए भैणे, मैं कुण, कुण घराना है मेरा,
सारा हिन्दोस्तान है मेरा, भारत मां है मेरी माता
ओ जंजीरां जकड़ी है, ओ अंग्रेजां पकड़ी है
उसजो अजाद कराणा है, मेरे नावें तू क्या लैणा है।
जे तू एह जाणी जांह्गी, मेरा ना पच्छयाणी जांह्गी
कोई भी एह सुणी लहंगा, ए अज मेरा ठकाणा था
न तू रहणी, न घर रेहणा; न पिंडे दा कोई नशाण रेहणा
इसते अच्छा है मेरिए बहणे, न मैं दस्सां, न तू जाणे
इक रात ही मैं बसराणा करना।''

इस कहानी में उस भारतीय नारी का उदात्त चरित्र तब मुखर होता है जब वह नाना का भेद फिरंगी तक पहुँचाने वाले अपने पति को समझाती असफल होकर कटार मार कर उसकी हत्या कर देती है। गहरी नींद से जगाकर नाना को वहाँ से भागने का संकेत देती है। नाना को जब इस सत्य का बोध होता है तो वे उसे भारत देवी, भारतीय-नारी मानकर सीस झुकाते हैं। इसी भाव को कांशीराम ने यूं कहा है—

''मैं गलाया, समझाया
मन्नेया मनाया, पर न मन्नेया
चलेया मेरा न चारा/ भारत मां तू बेड़ी पाणे आला
मेरा क्या है लगदा/ भारत मां ने मिन्जों गलाया
मां दे प्यारे दी शक्ति आई
कटार मार झट मुकाया
तां तिज्जो जगाया
नाने दियां अक्खियां अत्थरू निकले
पैर छूणे की सीस झुकाया
भारत देवी, भारत दी नारी
लाज रक्खी अज तू भारी।''

इसी परम्परा में 'अटक जेल का हाल', 'तू मिन्जो दसगा उसकी', 'सात सौ तीस दिन कैद', 'मुलतान जेल बारक नं. 14' आदि ऐसी लम्बी कविताएं हैं जिनमें कथातत्व की प्रधानता है। इनकी अन्य काव्य-कहानियाँ प्रकाशित नहीं हुई हैं। वैद्यस्वाया राम ने ऐसी काव्य-कहानियों की पाण्डुलिपि बनाकर रखी है, जिसे मैंने स्वयं देखा है। रोमांच तथा शौर्य भावों से भरपूर ये रचनाएं बाबा कांशीराम के काव्य-कथा रचना कौशल के उत्कृष्ट नमूने हैं। वास्तव में इन रचनाओं को पढ़ने के पश्चात मुझे ऐसा लगा कि तत्कालीन इतिहास या घटनाओं को जहाँ राष्ट्र नेता अपने ओजपूर्ण भाषणों के माध्यम से जनता के सामने लाते वहाँ अन्य कवियों की भान्ति बाबा कांशीराम भी उन घटनाओं को काव्य-कथा

रूप देकर अपने इलाके में सुनाते फिरते। वे जिस जेल में गए, जिस घटना या जिस संघर्ष से जुड़े उसका भाव-चित्र कविता, गीत या ऐसी काव्य-कथाओं के माध्यम से लिखा और जन-जन को सुनाया। वे अन्त तक एक ही मस्ती में मस्त रहे—

"ओही रस्ता जित्थु होर चली गै
ओह तां कमाई गै। असां बि कमाना
कांशीराम सुन ऐह कैंह्दा
जेहड़ा गुरदासपुर जेल रैंह्दा
कागज खलारी जेल बिच बैंह्दा
वायदा स्वराज भुली नी जाना।"

अर्थात् - स्वराज्य का वादा भूल नहीं जाना। हमें भी वही मार्ग अपनाना है जिस पर और गए। वे तो नाम कमा गए, हमें भी वैसा ही नाम कमाना है। सुनो! कांशीराम यही कहता है, जो गुरदासपुर जेल में रहता है, कागज 'बखूर' कर जेल में बैठा काव्य रचता रहता है।

स्वच्छन्दतावादी कवि

उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय मध्यम वर्ग में एक नयी चेतना जागी। इसी वर्ग के कुंठित तथा अभावग्रस्त जीवन को इस काल की कविता में अभिव्यक्ति मिली। सामंती व्यवस्था तथा ज़मींदारी प्रथा अधिक से अधिक कर वसूल कर उनका शोषण कर रही थी। अंग्रेज़ अपनी स्वार्थ-सिद्धि में कार्यरत थे। राजनीतिक दमन सम्बंधी कानून बन रहे थे, प्राकृतिक प्रकोपों की घटनायें घट रही थीं। हिन्दू धम में शिथिलता, ईसाइयत के प्रचार का जोश, ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि संस्थाओं के सुधारवादी आन्दोलन, शिक्षा की आवश्यकता पर बल, नारी अधिकारों के प्रति जागृति, बाल विधवाओं के प्रति सहानुभूति, प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम, स्वदेशी का प्रचार तथा उसके बाद कुछ ऐसी घटनाएं घटती गईं जिनके परिणामस्वरूप भारतीय चिन्तन बदलता गया। बाबा कांशीराम का व्यवसाय की तलाश में अपने गाँव से निकलकर लाहौर पहुँचना एक वरदान सिद्ध हुआ। वहाँ उन्हें ऐसा वातावरण मिला जिसके प्रभाव से वे राष्ट्रधारा से जुड़े, परिणामस्वरूप समकालीन स्वच्छन्द काव्यधारा का प्रभाव भी उनकी अभिव्यक्ति में मुखर हुआ।

उन्होंने किसी बंधी परंपरा में काव्य रचना न करके सृजन की शिल्पगत नयी दिशायें तलाश कीं। उनके चिन्तन में प्रवाह है, किशोर मानसिकता की अधिकता के साथ प्रेम, कल्पना तथा संवेग की प्रधानता है। उनका काव्य सामंती व्यवस्था विरोधी और रोमांटिक प्रकृति से भरपूर प्रगतिशील है। आवेगों का प्रवाह, संवेदनापूर्ण वस्तु तथा सरलता के प्रति अनुराग उनकी काव्यगत विशेषतायें हैं। राष्ट्रीय धारा से जुड़ी उनकी कविता ''तू मिन्जो दसगा उसकी'', उनके कैदी-मानस के भीतर दुबके बैठे पत्नी के विच्छोह और घर में अकेले पड़े बच्चों की संवेदना को यूं व्यंजित करती है—

''मैं जेलां बचि बखियां/ बदलदा था
नींद रूस्सी गई थी।
अपणी बीबी दी यादा बिच
कन्ने याद आवा दी थी/ अपने बच्चे दी''
*   *   *
माऊ दे दिल च/ दूध पियाने दा चा
रही गिया/ ओ चली गई :

मुन्नू जाहलू पुछगा
मां कदई थी/ गोरी थी, काली थी, चिट्टी थी
कदई थी मेरी मां/ क्या तू मिन्जो दसगा उसकी
मेरियां अक्खां छम-छम बगी गईयां
विरया दी अग तने लगी गई
नींद नठी दूर। चली गई।

अर्थात्- मैं जेल में करवटें बदलता था/ नींद रूठ गई थी/ पत्नी की याद में/ याद आ रही थी उस अपने बच्चे की/ जिसके लिए माँ के मन में दूध पिलाने का चाव रह गया/ वह चली गई/ बच्चा जब पूछेगा/ माँ कैसी थी/ गोरी थी, काली थी, सफेद थी, कैसी थी मेरी माँ/ क्या तू मुझे दिखाएगा उसे मेरी आँखें छम-छम रोने लगीं/ विरह की आग सारे तन में लग गई। नींद भाग गई दूर/ दूर चली गई।

इसी प्रकार 'तीन लाल', 'अटक जेल का हाल', 'ना कर गल्लां मुन्नुआं कन्ने जाणे दिआं', 'मेरा स्नेहा भुक्खेआं' 'नंगेआं जो', 'समाज नी रोया' आदि कविताओं में भी ऐसे ही विस्फोट भाव व्यंजित मिलते हैं।

राजनीतिक तथा सामाजिक सत्ता के प्रति विद्रोह का स्वर तो उनकी प्रायः प्रत्येक कविता में किसी न किसी रूप में निहित है। वे इस सत्य को गाँव-गाँव तथा व्यक्ति-व्यक्ति के पास लेकर गए कि जब तक समाज तथा व्यक्ति अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक नहीं होगा, शोषित होता रहेगा। उन्होंने शासन तथा सत्ता का खुलकर विरोध किया और समूचे जनमानस को उनसे टक्कर लेने की प्रेरणा दी। उन्होंने ज़ोरदार शब्दों में कहा-

''देश बड्डा है, कौम बड्डी है,
जिन्द अमानत उस देशा दी।''

अर्थात् - देश बड़ा है/ कौम बड़ी है/ यह जीवन उसी देश की अमानत है। अतः इसे उसी अर्थ में काम आना चाहिए। वे उन वीरों की ओर संकेत करते, उनके त्याग-बलिदान को गिन-गिनकर दोहराते, जनजागृति करते कहते-

''सारा हिन्दोस्तान है मेरा
भारत मां है मेरी/ ओ जंजीरा जकड़ी है
ओ अंग्रेजां पकड़ी है
कांशी उसजो आजाद कराना है।''

वे जहाँ भी जाते वहाँ यही पूछते-

''कुस कम्म तेरी जवानी/ कुस कम्म तेरी बलवानी
मरी ने देसे दी खातिर तू/ लब्बे न आज़ादी।''

"जीण क्या है भाई, चलदा-चलदा मैं पुजी गिया, अक्खर कियां बणदे, पंज चिट्ठियां" आदि कवितायें विषयीगत सौंदर्य, व्यक्तिगत प्रभावों की कलात्मक अभिव्यक्ति तथा मनोवैज्ञानिक व्याख्या का आधार आदि स्वच्छन्दतावादी काव्य गुणों से भरपूर हैं। उनकी काव्य चेतना लोकगीतों की उन्मुक्त अनभावनाओं से प्रेरित थी परिणामतः उसमें लोक, लोक-जीवन तथा लोक-संस्कृति का प्रभाव भी रहा है। इस दिशा में उनकी- 'देस परमेसरा किआं बसणा ?, निक्के-निक्के माहणुआं जो दुःख बड़ा भारा, बड़ी वेदणा, मेरा डाडा, कांशी दा सुनेहा, ना कर गल्लां मुन्नुआं कन्ने जाणे दिआं, मेरा स्नेहा भुखेआं-नंगेआं जो, दोहा पहाड़ी, रोह, समाज नी रोया' आदि कुछ ऐसी कविताएँ हैं जिनमें प्रगतिशील काव्य की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

उनके काव्य में अतीत के प्रति लगाव भी मिलता है। उनका कवि भारतीय इतिहास के स्वर्ण पन्नों को खोलकर अपने देशवासियों में आत्मोत्सर्ग की भावनाओं का संचार करना चाहता है। इस पक्ष में- 'नजर घुम्मदी', 'नौक्खी गल', 'जिन्दाबाद होए', 'कुणाले दी कहानी कांशी दी जवानी', 'दुए दे मने कोई रहम नी हुण्दा', 'आजादी हमने कैसे लेनी है', 'गोएं-गोएं जायां मटियारे' आदि कवितायें अपना संदर्भ रखती हैं। ग्राम्य जीवन चित्रण तो इनकी कविताओं की मूल संवेदना है। वे ग्रामवासियों को, वहाँ की जीवन पद्धति, उनकी दीन स्थिति, शोषक वर्गों द्वारा उनके शोषण के प्रति बार-बार चेताते हैं। उन्हें वर्तमान से साक्षात्कार करवाते और भविष्य के प्रति जागरूक करते हैं। प्रायः प्रत्येक कविता में ऐसी चेतना अनायास आई है। इस दृष्टि से उनका काव्य अपनी मिट्टी तथा युगचेतना से जुड़ा रहा।

बाबा कांशीराम का कवि प्रकृति से भी प्रभावित रहा। जीवन की यथार्थ अनुभूतियों को प्राकृतिक बिम्बों, प्रतीकों तथा रूपकों के माध्यम से संवेदनीय बनाने की कुशलता तो मानो उन्हें वरदान में मिली थी। ऐसे प्रभाव अनायास रूप में उभरे हैं जिनसे सम्पूर्ण काव्य संवेदनीय बन गया है। उन्हें तो आज़ादी पाने का सन्देश भी प्रकृति ही देती है—

"पतला पतला न्हेरा होया था
स्वास हवा दे बन्द थे
हुई-हू करदियां सतियां दियां
रूहां विच समाना घुमन पाई के
स्नेहा आज़ादी दा कांशी की दिदियां थीयां।"

हलके-हलके अंधेरे के साथ हवा के स्वासों का बन्द होना, आसमान में घेरा डालती सतियों की रूहों का कांशी को आज़ादी का सन्देश देना, उनके द्वारा लोक बिम्ब का सहज प्रयोग है जिससे व्यक्ति मानस इतना प्रभावित होता है कि उस मार्ग पर प्रयाण करने के बिना रह नहीं पाता। इसी प्रकार-

"संझा दे सूरजे/ अम्बरे पर लाली छाई
लाल बदलां दियां टोलियां

जफियां पाई के कठियां होईयां
तां न्हेरा होने जो आया।"

यहाँ डूबते सूर्य के बिम्ब के सहारे काल रात्रि की संभावना में ही दासता की पीड़ा तथा दर्द की आशंका के प्रति कवि चिन्ताग्रस्त लगता है। कवि ने रोमांटिक भावों को भी प्रकृति-बिम्बों से साकार करने का सहज प्रयोग किया गया है—

"जाहलू तू चलदी/ साहमणे दे तारे
होर चमकी पोंदे/ धरत गाना, गाणा
लगी पौंदी/ साहमणे दी हवा अप्पूं बिच
पुछगिछ करना लगदी।
तां अखड़ियां दा सारा नसा
पिंडे दे अंगा-अंगा उतारी देंदीं
फिरी सूरज पहाड़ां दिया ढागा ते
डरदा-डरदा उप्पर आई जांदा।"

उनका काव्य मानवीय प्रेम तथा मनुष्य के रूप में मनुष्य का आदर करने की भावना से ओतप्रोत है। उनकी अभिव्यक्ति का स्वरूप प्रगीतात्मक होने के कारण आत्मपरकता, एक पक्षीय संवेग, सहजता, मीठी-मीठी तथा सुरीली भाषा से युक्त है। अनेक कवितायें प्रथम पुरुष में ही अभिव्यंजित हैं। यथा —

"ना कर गल्लां मुण्डुआ/ मैं बाबुए की गलांगा/
छुट्टी लइके सताबी औंगा
न उदरयां मेरया बालका
मेरिये जिन्दे! मेरिये जान्नी
मत घबरायां, निक्कियां भैणां कने खेलयां,
अम्मा देया जाया, बापूए देआ लाडलेआ।"

अर्थात् - हे पुत्र! साथ चलने की बात मत कर! मैं बाबू से कहूंगा। छुट्टी लेकर शीघ्र लौटूंगा, तू उदास मत होना! मेरे प्राण, मेरी जान मत घबराना, छोटी बहन के साथ खेलना मां के जाए, बापू के लाडले।

ऐसे ही भाव "पंज चिट्ठियां", 'भारत री नारी', 'में छेड़या बहारां रा गीत' आदि कविताओं में भी मिलते हैं।

रूप सृजन की विशेषता भी उनके काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है। 'कुणाले दी कहानी, कांशी री जवानी' में तो कवि को ऐसे व्यापक अवसर मिले हैं-

"सीरदा सूरज निकलेया था
कंवल डल़े दे खिले थे
वाहां च वाहां पाईयां

नदिया दे नीरे साहीं
दिल उन्हां दे सिज्जे थे।''

सूर्योदय होते ही डल झील के कमल दलों के खिलने के साथ प्रेमी युगल के हृदय की सुप्त भावनाओं का उन्मुक्त होना और नदी के जल सदृश उनके अन्तस् का भीगना एक सहज रूपाकंन नहीं तो क्या है। एक अन्य कविता खण्ड में गाँव की लाज बचाने हेतु चौतरफा जंगल का खड़ा होना एक सहज कवि-मानस के उत्तम काव्य चिन्तन का उदाहरण है—

''निक्का देआ पिंड था। निक्के-निक्के टपरू थे
* * *
इन्हां टप्परूआं दी लाज बचाणे जो
चारों पास्से रूक्खां रा बण था।''

इसी प्रकार ''नालू'' कविता में कवि कहता है:-

''कई राही आए। कई गै
कितणआं अपणी तिया बुझाई
* * *
कितणेयां अपणे दिले दिया
अग्गी जो ठण्डा कीता
* * *
पर कुसी नी पुछेया। मैं कैंह अंजुआं दी धार बगादा
मैं सारयां की तसकीन दिन्दा चली गिया
मिन्जो कुसी नी दित्ती।''

''गौएं-गौंए जायां ओ मटियारे'' रूप चित्रण के साथ-साथ प्रगीतात्मकता भरी रचना है। यथा :

''कदी धुपड़ी कदी छांव/ कदी पन्हार पौंदे
दरया दे/ ओ मटियारे।
कदी सौण भादों दियां झड़ियां
काली-काली घटां वे
कदी-कदी फागुन-चैत्रे दियां लगदियां
झड़ियां, ओ मटियारे!
फुल पौंदे चिट्टे-चिट्टे/ उगी-उगी

धारां/ ओ मटियारे!
चादर चान्दी दी उड़ी/ बणी जांदी
सुन्ने दी भ्याग, ओ मटियारे।''

वास्तव में कांशीराम का कवि परतंत्रता, निर्धनता, रूढ़िवादिता, अलगाव, अनपढ़ता आदि समस्याओं से जूझता एक सुनहले भविष्य की संभावना को भी पालता रहा। इसी संभावना के सहारे उसने अवसाद पिए, संघर्ष झेले, अभावग्रस्त विरही जीवन जीया। परन्तु उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति कहीं न कहीं प्रणय द्वार पर जाती अपने भीतर के रहस्य को कहने से रुकी नहीं-

''हरिया भरिया बेलां साहीं
ताजे टहकदे फुल्ले साहीं/ इस सरूए साहीं
चौखटा ने टेक लाई/ खलोती कुण थी
खड़ोती क्या थी/ लचका दी थी
घणे बाला ने विच/ गब्बो-गब्ब
उजली सिद्धी मांग
जियां कालियां घटां बिच
उड़दे बगलैयां दी चिट्टी कतार।''

परन्तु स्थितियां उनकी प्रणय भावनाओं का गला दबाती विलम्ब नहीं करतीं-

''प्यारे दी लकड़ी सुकी गई
सुक्की लकड़ी सुकी गई
या मुकी गई, पता नी क्या होया
तू मौका पाई, जफ्फी पाई
मेरा मूंहडा गिल्ला होई गिया
तू दौड़ी गई।''

प्रणय हो या जीवन का कटु यथार्थ, स्वतंत्रता चेतना का प्रसंग हो या ग्रामीण दरिद्रता का चित्रण, कांशीराम ने सर्वत्र रूपात्मक भाषा, समय की भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने अंग्रेजों की शोपण-वृत्ति की प्रक्रिया को समझाते हुए लोगों की जिस भाषा, जिस प्रतीक का प्रयोग किया उससे वे परिचित थे। एक ऐसे ही भाषण का अंश प्रस्तुत है-

''जिआं चीह्लां जो दूहणे ताई कूजू लाईते
तिआं सरकारा तुहाड़ खून भी
हौलें-हौलें चूसी लैणा।''

इस वाक्य में चीड़ वृक्ष का बरोज़ा एकत्र करने के लिए कूज़े का प्रयोग और सरकार की मीठी-मीठी शोषण वृत्ति का बोध कराना, उनकी अभिव्यक्ति, सजगता तथा प्रयोगशीलता का उत्तम उदाहरण है। संक्षेप में कांशीराम का अहमवादी कवि व्यक्तिवादी न

होकर सार्वजनिक है, लोक कल्याण के धरातल पर अवस्थित है। आंचलिक सहज भाषा का प्रयोग, आम जनता की भाषा का प्रयोग, लोक बिम्बों, प्रतीकों, अप्रस्तुत का सहज प्रयोग तथा सामयिक समस्याओं का चित्रण इनके स्वच्छंदतावादी कवि की पहचान है। उन्होंने अपने काव्य में दोहा, शेऽर, रूबाई, गीत, प्रगीत, भजन, खण्ड काव्य, तथा स्वच्छन्द-काव्य सभी प्रकार के प्रयोग किए और अपने अभीष्ट को संप्रेषणीय बनाया। अतः उन्हें पहाड़ी-डोगरी का प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा।

उपन्यासकार

बाबा कांशीराम के साहित्य का सर्वेक्षण करने पर उनका एक हस्तलिखित उपन्यास भी मिला, जिसका शीर्षक "बाबा बालकनाथ से फरियाद" है। यह हिन्दी (हिन्दोस्तानी) में लिखा है। हिमाचल प्रदेश भाषा-संस्कृति अकादमी के सचिव डॉ. बंशीराम शर्मा ने इसे उनके पुत्र स्वायाराम वैद्य के पास सुरक्षित पाया है। इसे संक्षिप्त रूप में सर्वप्रथम हिमप्रस्थ में उन्होंने ही प्रकाशित करवाया। वर्ष 1986 के हिम-भारती विशेषांक (मार्च-जून) में भी इसका संक्षिप्त कथानक बिना किसी फेर बदल के पहाड़ी में प्रकाशित हुआ है। इसी प्रसंग में मेरे लिखे पत्रोत्तर में उन्होंने लिखा है —

"बाबा कांशीराम उपन्यासकार थे। यही नहीं, मैं उन्हें हिमाचल प्रदेश का प्रथम हिन्दी उपन्यासकार मानता हूँ। यद्यपि उनका लगभग 120 पृष्ठ का हस्तलिखित हिन्दी उपन्यास "बाबा बालकनाथ से फरियाद" प्रकाशित नहीं हो पाया, परन्तु सन् 1924-25 में लिखा गया यह उपन्यास स्व० यशपाल जी के उपन्यासों से भी प्राचीन रहा होगा, ऐसा मानना इस तर्क पर आधारित होगा कि उनका देहावसान सन् 1943 में हुआ जबकि यशपाल का प्रथम उपन्यास सन् 1935 के बाद छपा। इस उपन्यास की प्रति को पढ़ने पर उसके कथानक तथा प्रस्तुतिकरण से बाबा कांशीराम के उपन्यासकार होने में सन्देह नहीं रह जाता। वैद्य स्वायाराम इस कथानक को एक लम्बी कहानी कहते थे और शायद उनका मत अभी भी वही हो परन्तु वास्तव में यह आधुनिक विधागत उपन्यास है।" उपन्यास का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है—

चन्द नामक यतीम लड़का भगतू नम्बरदार के यहाँ भेड़-बकरियां चराता था। नम्बरदारनी उसे बहुत चाहती थी। वह उसका विवाह गाँव की भालो नामक लड़की से करना चाहती थी। भालो एक बहादुर लड़की थी। उसने बाघ के मुँह से वह बकरी छुड़ाई थी जिसे उस रियासत के राजा शिवसिंह ने मारने का प्रयास किया था। उसके शौर्य की कहानी सुनकर राजा ने उसे ब्याहकर रानी बनाने की ठान ली थी। नम्बरदार को ऐसा जानकर दुख हुआ। उसने अपने मुजारे भिक्खू को दयोटसिद्ध जाकर बाबा बालकनाथ की मनौती करने के लिए 'जातरा' ले जाने को कहा।

उसने नम्बरदारनी को यह भी बताया— 'उसे राजा ने बुलाया था, बड़ी आदर-खातिर भी की। संभावना है वजीर भी बना दे। इसीलिए कल फिर बुलाया है।' नम्बरदारनी को राजा की नीयत पर शक होने लगा। वह सोचती- 'अब फरियाद करूँ तो किससे ? यहाँ तो बाड़ ही खेती को खाने लगी है।' उसे बाबा बालकनाथ पर पूरी आस्था थी अतः सब

कुछ उसी पर छोड़ दिया।

मालो भिक्खू मुजारा की लड़की थी। दूसरे दिन नम्बरदार राजा के पास जाते समय उसके घर गया। भिक्खू ने बताया— 'राजा यहाँ आया था। उसने मालो को ब्याह देने पर जागीर देने का वचन दिया है। मालो की माँ ने फरियाद करते कहा— महाराज मालो तो आपकी पुत्री रानो के समान है अत: उसे तो 'धी' (बेटी) समझना चाहिए। परन्तु, इस पर राजा बहुत बिगड़ा और उसे डाँट-डपट की।'

राजा की दो रखैल रानियाँ थीं जिनके सम्बंध बन्दूकची घसीटू और लच्छो भण्डारी के साथ थे। लच्छो राजा की पुत्री रानो को भी ब्याहना चाहता था। वह भी यही चाहता था कि मालो का ब्याह राजा से हो जाए तो उसे रानो को भगाने का अवसर मिल जाएगा। भगतू ने राजा के यहाँ जाकर रानी को बताया कि वह बाबा बालकनाथ को 'पंधाड़ी' देने जा रहा है। अत: उनकी आज्ञा लेने आया है। उसने यह भी बताया कि वह अब शीघ्र ही मालो और चन्दा की शादी कर देगा। जातरा पर राजा शिब्बू भी वहाँ पहुँच गया। उसने मालो और चन्दा की शादी पर दहेज भी दिया। परन्तु पहली ही रात को अपने बदमाशों से चन्दा को मरवा दिया। चन्दा की मृत्यु पर मालो ने जो विलाप किया, वह काव्यांश अति मार्मिक है :

''ओ पंचो! कने ओ बालकनाथ देवत्या!
कांशी कुसी दा बुरा नी चाहेयां,
कुसी दा बुरा नी सोचयां,
ना कुसी दा बुरा नी दिखेयां
ना कुसी दी बुरी गलायां।''

दूसरी ओर लच्छो भण्डारी रानो को व्यास के उस पार के गांव में किसी लड़के के साथ ब्याहने हेतु किश्ती में बैठा कर भगा ले गया। राजा ने गोली चलाकर लच्छो की हत्या कर दी। रानी और रानो किश्ती में बेसहारा होकर सहायता की पुकार करने लगीं।

मालो व्यास के किनारे पति की समाधि के निकट कुटिया बनाकर रहती थी। उसने उनकी चीखो-पुकार सुनी। वह दरिया में कूद कर तैरती हुई गई और उन्हें बचा लिया। वह बेहोश रानी को चन्दा की समाधि पर ले गई। रानी जब होश में आई तो दोनों परस्पर 'बहिन' कहते हुए गले मिलीं।

इस रचना से बाबा कांशीराम की कथा-सृजन कुशलता का बोध होता है। यद्यपि वे उपन्यास सृजन शिल्प से अबोध थे तथापि जो भाव-विचार उनके मन में तत्कालीन सामंती व्यवहार से जन्में, उन्हें वाणी देने में पूर्ण रूप से सफल हुए। मुझे इसे पढ़ने पर कुछ ऐसा लगा कि बाबा कांशीराम जिस चेतना को अपने गीतों, कविताओं, काव्य-कथाओं में कहते रहे, उन्हीं भावों को इस कहानी के कथानक तथा पात्रों के माध्यम से कहने का प्रयास किया है। ब्रिटिश सरकार के चंगुल से भारत मां को कैसे मुक्त कराया जाए उनकी

सोच की यह मूल संवेदना इस रचना में भी मुखर हुई है। जहाँ उन्होंने बुरा न सुनने, बुरा न देखने, बुरा न कहने की बात करके गाँधीवादी प्रभाव को सांकेतित किया है वहाँ यह भी सिद्ध किया है कि सत्य की असत्य पर, धर्म की पाप पर विजय होती है। अतः सत्याग्रह पर स्वयं को आहूत कर देने में ही जीवन की सार्थकता है।

उपसंहार

ग्यारह जुलाई सन् 1882 ई० को ग्रामीण परिवेश में बाबा कांशीराम का जन्म हुआ। उसी परिवेश में शैशव बीता और गाँव के स्कूल में ही प्राईमरी तक पढ़े। आठ वर्ष की आयु में गृहस्थी बन गए। पत्नी की आयु पाँच वर्ष थी। उन दिनों पहाड़ में छोटी आयु में ही रिश्ते और ब्याह का रिवाज़ था। बारहवें-तेरहवें वर्ष में पहले पिता का फिर माता का देहान्त हो गया। घरबारी को चलाने की सोच में व्यवसाय की तलाश करते-करते 16 वर्ष की आयु में लाहौर पहुँचे। वहाँ एक रिश्तेदार के साथ दुकानदारी करते-करते किन्हीं शहनशाह जी महाराज की संगति से प्रभावित हुए जिससे उनके भीतर के गायक को प्रोत्साहन मिला। पंजाबी गीतकार लाल चन्द 'फलक' से प्रभावित होकर पहाड़ी, पंजाबी, डोगरी मिश्रित भाषा में गीत, भजन, कविता, दोहा आदि रचने लगे।

1905 के कांगड़ा के भूचाल में लाला लाजपत राय से भेंट होना उनके विचार तथा जीवन पद्धति में आया बदलाव राष्ट्र को समर्पित होकर समाजोद्धार, श्रमिक-उद्धार, स्त्री शिक्षा, स्वदेशीयत का प्रचार, असहयोग आन्दोलन आदि स्वतंत्रता अभियान की गतिविधियों से उत्तरोत्तर जोड़ता चला गया। सन् 1911 के दिल्ली दरबार की घटना के बाद गाँव लौटे और महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन पर चलना आरंभ कर दिया। गाँव-गाँव घूमकर, जलसे-जुलूस आयोजित कर पहाड़ के लोगों में आज़ादी की भावना पैदा करना ही इनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य बनता गया। सन् 1917 ई० में दूसरे पुत्र स्वाथाराम का जन्म हुआ और इसी वर्ष पत्नी स्वर्ग सिधार गई। सन् 1920 में पहली गिरफ्तारी हुई और इसी के साथ जेल जाने का सिलसिला शुरू हुआ।

अस्त-व्यस्त घर-गृहस्थी, अव्यस्क बच्चों के पालन-पोषण की समस्या, पत्नी का विछोह मन को विचलित कर देता, परन्तु स्वतंत्रता की चेतना प्रसारित करने का संकल्प इन सभी बाधाओं को अनदेखा कर देता। सरदार भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव आदि को लाहौर में हुई फांसी की घटना से इनके मानस में इतना अन्तर्द्वन्द्व हुआ कि आज़ादी पाने तक काले कपड़े पहनने का संकल्प लेकर ''स्याहपोश जरनैल'' बन गए। इनकी पहाड़ी संगीत माधुरी से प्रभावित होकर सरोजनी नायडू ने इन्हें, सन् 1931 में, 'बुलबुले पहाड़' का खिताब दिया। इनकी 'देश-सेवा' और 'पहाड़ी काव्य लहरी' से प्रभावित होकर गढ़दीवाला कान्फ्रेंस में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने ''पहाड़ी गाँधी'' कहकर सम्मान दिया। गुरदासपुर, लाहौर, होशयारपुर, अटक, धर्मशाला, फिरोज़पुर और मुलतान की जेलों में 730

दिन जेल काटी। जीवन में ग्यारह बार जेल गए। परन्तु आज़ादी पाने की हसरत दिल में रखते हुए, असमय शारीरिक दुर्बलता बढ़ने के कारण 15 अक्तूबर 1943 को इनका देहांत हो गया।

उन्होंने अपने संघर्षमय जीवनकाल में 500 कवितायें तथा 8 काव्य-कहानियां लिखीं। एक हिन्दी उपन्यास की भी रचना की। उन्होंने अपने जीवन काल में जो देखा और भोगा उसी को अपने काव्य का विषय बनाया। पहाड़ के सीधे-सादे, अनपढ़ लोगों के साथ वे अपनी बात सरल पहाड़ी, डोगरी, हिन्दी, उर्दू मिश्रित भाषा में ही करते, वह भी अधिकतर कविता में। उनकी अपनी धारणा थी कि गद्य की अपेक्षा पद्य में कही बात लोकमानस में दीर्घजीवी होती है, प्रभावी भी।

सामाजिक विद्रूपताओं का चित्रण, प्रकृति-परिवेश, सामयिक चेतना, सौन्दर्य चित्रण, मानवीय संबंधों का अनुराग, अतीत के प्रति मोह, निजभाषा प्रेम, आंचलिक बिम्ब, प्रतीक तथा अप्रस्तुत प्रयोग, प्रणयी संवेदना, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति, अन्योक्तिपरक शैली, मुक्त छंद, कटु सत्य कहने का दम, इतिहास के प्रति सजगता, अनासक्ति में आनन्द, प्रगीत शैली, जीवन सत्य का बोध आदि विशेषताओं से ओतप्रोत है, इनका काव्य।

चाहे कुछ भी सोचा और कहा जाए परन्तु यह सत्य है कि बाबा कांशीराम ने जिस राष्ट्रीय चेतना को व्यावहारिक रूप दिया उसे अपनी भाषा के माध्यम से भी उतनी ही शक्ति और कुशलता से जन-जन तक पहुँचाया। इस दिशा में प्रो० नारायण चन्द पराशर के ये शब्द कितने प्रासंगिक हैं—

'Whether pahari Gandhi's stature was higher as a freedom fighter or as a poet. Be that as it may, it is safer to assume at the moment that he will be remembered long on both scores. While on the one hand his struggle and sacrifice for freedom threw him head long into the whirlpool of political activity, his passion for pahari - his mother tongue - kindled the fires of passion in him to a remarkably strong degree.

(Baba Kanshi Ram, The poet, page 26, Publication Division, New Delhi, 1985)

अर्थात् -"पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम की महानता स्वतंत्रता संग्रामी के रूप में बड़ी थी या कवि रूप में, ऐसा निर्णय देना अति कठिन है। परन्तु जो भी हो, इस अवसर पर यह मान लेना उचित होगा कि वे दोनों उपलब्धियों में समान रूप से स्मरणीय रहेंगे। जहाँ उन्होंने राजनीतिक भंवर में सिर के बल छलांग लगा दी, वहां पहाड़ी भाषा (मातृ भाषा) के प्रति उनके अनुराग ने अपने भीतर के संवेगों को भड़का दिया। यद्यपि उन्होंने अपनी कविता का प्रयोग लोगों में स्वतंत्रता चेतना जगाने के लिए किया तथापि उन्होंने अपनी आत्मा के बोझ को हल्का करने के लिए भी काव्य रचा।"

ग्रामीण मंच पर लोकगीतों को गाने-सुनाने का मोह रखने वाला कांशीराम का कवि एवं गीतकार स्वतंत्रता-सेनानियों के संपर्क में आकर युगचेता कवि और पहाड़ी में

मुक्त छन्द का प्रणेता बन गया। उनका कवित्व स्वतंत्रता आंदोलन के प्रचार से आरम्भ हुआ और सत्ता की कठोरता को सहता जेल की कोठरी में राष्ट्रीय धारा से जुड़कर मानव की कमनीय भावनाओं की संवेदना का स्पर्श दे गया। उन्होंने पहाड़ी के अतिरिक्त हिन्दोस्तानी तथा डोगरी-पंजाबी मिश्रित पहाड़ी काव्य भी रचा। अपने हिन्दी उपन्यास "बाबा बालकनाथ से फरियाद" में तत्कालीन सामन्ती मानसिकता को एक रोमांटिक कहानी द्वारा रूपायित किया है। सत्य की असत्य पर, पाप की पुण्य पर विजय होती है, इसकी भी स्थापना की है। उनके उर्दू लिपि में रचित काव्य की पाण्डुलिपियाँ स्वायाराम वैद्य (पुत्र), निवासी कैंट बाज़ार डल्हौजी, हिमाचल प्रदेश के पास सुरक्षित हैं। उन्होंने कुछेक का हिन्दी लिप्यान्तरण करके "पहाड़ी सरगम" पुस्तक में प्रकाशन भी करवाया है। शेष साहित्य अप्रकाशित पड़ा है। उनका साहित्य विषय तथा शिल्प की दृष्टि से पहाड़ी-डोगरी के साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अतः उसका प्रकाशित होना एक युगीन आवश्यकता है।

बाबा कांशीराम के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

11 जुलाई 1882 ई०, पद्धयाली डाडा सीबा (ज़िला कांगड़ा) में जन्म।

1890 ई०, श्रीमती सरस्वती देवी के साथ विवाह।

1893 ई०, पिता लखनू राम का देहान्त।

1894 ई०, माता रेवती देवी का देहान्त।

1898 ई०, लाहौर पहुँचना।

1905 ई०, कांगड़ा का भूकम्प और लाला लाजपत राय के साथ सेवाकार्य।

1906 ई०, स० अजीत सिंह तथा सूफी अम्बा प्रसाद के साथ लाहौर में भेंट।

1908 ई०, लाला हरदयाल के साथ भेंट।

1911 ई०, दिल्ली दरबार देखना और लार्ड हार्डिंग पर बम।

1913 ई०, बड़े पुत्र ज्ञानचन्द का जन्म।

1917 ई०, दूसरे पुत्र स्वायाराम का जन्म।

1917 ई०, धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती देवी का स्वर्गवास।

1919 ई०, सत्याग्रह का हल्फ़ लेना।

1920 ई०, (अगस्त) पहली गिरफ़्तारी 'डाडा सीबा' में ।

1920 ई०, पहली कविता "निक्के-निक्के माहणुआ जो" ।

1921-22 ई०, धर्मशाला में लाला लाजपत राय के साथ जेल काटी और गुरदासपुर जेल भी लाला जी के साथ काटी।

1924 ई०, लायलपुर कांग्रेस इजलास में शामिल।

1927 ई०, दूसरी गिरफ़्तारी, लाहौर में जेल काटी।

1928 ई०, कलकत्ता आल इंडिया कांग्रेस इजलास में शामिल।

1930 ई०, तीसरी गिरफ़्तारी अटक जेल में काटी।

1931 ई०, स० भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव को फाँसी। जिसके परिणामस्वरूप 23 अप्रैल 1931 ई० से काले कपड़े पहनना शुरू किया।

1931-32-34 ई०, जुगलेहेड़ (ऊना) दौलतपुर (ऊना) और जनाड़ी कांफ्रेंस में सरोजनी नायडू द्वारा बुल-बुले-पहाड़ का खिताब।

1935 ई०, डाडा सीबा कांफ्रेंस।

1937 ई०, गढ़दीवाला होशियारपुर कांफ्रेंस, पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा 'पहाड़ी गांधी' का खिताब देना।

1939 ई०, नादौण, सुजानपुर टीरा और हमीरपुर में कांफ्रेंस।

1939 ई०, मंगवाल—धमेटा कांफ्रेंस।

1940 ई०, ज्वालामुखी—कालेश्वर महादेव (परागपुर) कांफ्रेंस।

1943 ई०, 15 अक्तूबर को देहान्त।

परिशिष्ट — 1
चयन

निक्के-निक्के माहणुआं जो दुक्ख बड़ा भारा

निक्के-निक्के माहणुआं जो दुक्ख बड़ा भारा
मिलदी नी रोटी किह्यां होणा गुजारा।

खाली पेट टब्बरे जो निन्द नी औंदी,
कदी सरहाणे सौये, कदी सौये पौन्दी,
पैसा नी पल्लैं मेरे, चल्लै नी चारा।
निक्के-निक्के माहणुआं जो दुक्ख बड़ा भारा॥

कपड़ा नी तना जो मिलेया, नंगे बीत उमर गेई मेरी,
जुत्ती नी पैरे पायी, कुब्बी होई कमर गेई मेरी,
रज्जी के नी खाह्दी रोटटी, भुक्खा ने मारा।
निक्के-निक्के माहणुआं जो, दुक्ख बड़ा भारा॥

सरकार बी डराये स्हांजो, हाकम बी खाये स्हांजो,
नौकर बी डराये स्हांजो, बेड़ियां बी पाये स्हांजो,
जैलदारा, लम्बरदारा, होर चौकीदारा।
निक्के-निक्के माहणुआं जो दुक्ख बड़ा भारा॥

मालिया नी पूरा हुन्दा, होर-होर बधाई जांदा,
छड़दा नी पैसा धेल्ला, लेई जंदा सारा,
छोटयां जो खाई करी, मोटे बणी फिरदे,
कांशी तां होवे सबदा, अज्ज छुटकारा।
निक्के-निक्के माहणुआं जो दुक्ख बड़ा भारा॥

(रूपान्तर)

छोटे-छोटे लोगों को दुःख बड़ा भारा
मिलती नहीं रोटी, कैसे हो गुज़ारा।

खाली पेट परिवार का, नींद नहीं आती,
कभी सोए सिरहाने, कभी सोए पैंदी,
पैसा नहीं गांठ में, चलता नहीं कोई चारा।

कपड़ा नहीं तन को मिला, निर्वस्त्र बीती उम्र मेरी,
जूता नहीं पाँव में डाला, कुबड़ी हो गई कमर मेरी,
पेट भर नहीं भोजन खाया, भूख ने बड़ा मारा।

सरकार भी हमें डराये, हाकम भी खाए हमें,
नौकर भी हमें डराये, बेड़ियों से जकड़े हमें,
जैलदारा, लम्बरदारा और चौकीदारा।

मालिया नहीं पूरा होता, और-और बढ़ाता जाता,
पैसा-धेला छोड़ता नहीं, सब कुछ हथियाता,
छोटों को खाकर, मोटे बनकर फिरते
कांशी! उनसे हो सबका, आज छुटकारा।
मिलती नहीं रोटी, कैसे हो गुज़ारा॥

समाज नीं रोया

मां भुक्खी ऐ
बच्चा भुक्खा ऐ,
तां दुध कुत्तू ?
बच्चा रोहंगा
तां मां ममता मारी
दुध दिहंगी
दुध नी आया ममुए
बच्चा रोणा लग्गा

मां तिसजो पुचकारणा लग्गी
अपणे मुहें कन्ने
उहदा मुंह लगाई दित्ता
बच्चे जाणया ऐह मम्मू ऐ
तिसजो चूंहगणा लगी पेया,
पर ओत्थू दुध कुतू ?
फिरी रोणा लग्गा
मां बी रोणा लग्गी
पर म्हारा समाज नी रोया॥

(रूपान्तर)

मां भूखी है
बच्चा भूखा है
दूध कहाँ ?
बच्चा रोएगा
तो ममतामयी मां
दूध देगी
दूध नहीं आया स्तन में
बच्चा रोने लगा
मां उसे बहलाने लगी
अपने मुंह से उसका मुंह लगा दिया
बच्चे ने जाना यह स्तन है
उसे चूसने लगा
पर उसमें दूध कहां ?
फिर रोने लगा
मां भी रोने लगी
परन्तु हमारा समाज नहीं रोया॥

सचाईया जो मौत्ता ते कोई डर नी

मिन्जो मस्हूरिया दा कोई बस्वास नी,
मिन्जो पता ए काल्ले दा समुंदर इह्जो
अपणियां लहरां दी मारा कने
टुकड़े-टुकड़े करी दिहुंगा।
सचाईया जो मौत्ता ते कोई डर नी
इसा सचाईया जो मैं जाणदा
जिह्जो मौत नीं छूहंदी॥

(रूपान्तर)

मुझे लोकप्रियता में कोई विश्वास नहीं
मुझे ज्ञात है काल का समुद्र इसे
अपनी लहरों के बहाव से
टुकड़े-टुकड़े कर देगा।
सत्य को मृत्यु से भय नहीं
इस सत्य को मैं जानता हूँ
जिसे मृत्यु स्पर्श नहीं कर पाती।

जीणा क्या है भाई

चलदे-चलदे पुज्जी गेया मैं
सागर रे कण्ढे
डुग्घी नीली तैह थी फैल्ली
जित्थू तक नजर थी जांदी
लैहरां-लैहरां पर लैह्रांदियां
जिन्द जवानी, यौवन री चानणी
जीवन री मस्ती
मस्तियां कने भरी थी जांदी।
इक लैह्र
पैरां मेरेयां टक्कर लांदी

मैं पुछेया उसते, जीण क्या है ?
जीण ऐ लैहरां साईं लैह्राणा
बणी जाणा, मिटी जाणा
फिरी बणी जाणा
हसणा, खेलणा, रौल़ा पाणा।

(रूपान्तर)

चलते-चलते मैं पहुंच गया सागर के किनारे
गहरी नीली तह फैली थी
जहाँ तक नज़र जाती
लहरें, लहरों पर लहरातीं
जीवन-यौवन, यौवन की चांदनी
जीवन की मस्ती। मस्तियों से भरी जाती॥
एक लहर। मेरे पांव से टकराती
मैंने पूछा उससे। जीवन क्या है ?
जीवन है लहरों सदृश लहराना
बनते जाना, मिटते जाना
फिर बन जाना
हंसना, खेलना, शोर मचाना॥

नोक्खी गल

परमात्मे चन्दने दा रूक्ख बणाया
खशबू दित्ती
पर उसजो फुल नीं दित्ते
स्त्रियां की सुन्दर बणाया
पर उन्हां की बफा दे फुल्ले ते
बांझ रक्खेया
आलमां, फाजलां की माया नीं दित्ती
पता नी ओ फिरी कियां करी दिन्दे
कवियां ल़खारियां जो -
न मुकणे आल़ी मुहब्बत दित्ती

कने कांशी गलान्दा
असां जो गरीबिया रजाई दित्ता।

(रूपान्तर)

परमात्मा ने चन्दन वृक्ष बनाया
सुगन्ध दी
पर उसे पुष्प नहीं दिए
स्त्रियों को सुन्दर बनाया
परन्तु उन्हें वफा के पुष्प से
बांझ रखा
आलमों, फाज़िलों को माया नहीं दी
पता नहीं; वे फिर क्या कर देते।
कवियों-लेखकों को-
अनन्त मुहब्बत दी
और कांशी कहता-
हमें गरीबी से तृप्त कर दिया।

उजड़ी कांगड़े देस जाणा

इन्हां पहाड़ियां दी मारी गेई मत्त लोको।
उजड़ी कांगड़े देस जाणा॥

परदेसे दे लोकी जागी उट्ठे,
स्हाड़े देसे दे लोक्की खूब सुत्ते,
इन्हां बड्ढेआ अपणा नक्क लोको।
उजड़ी कांगड़े देस जाणा॥

हर जगह कांग्रेस वाले लोक बणी गेए,
स्हाड़े पहाड़िये सारे डरपोक बणी गेए,
कौमी नाम दा बजदा फट्ट लोको।
उजड़ी कांगड़े देस जाणा॥

घा, लक्कड़ुआं, डंगरां मत्त मारी,
भूल भुल्ले अक्कल गेई मारी,
लड़ी कचहरियां जांदे झट लोको।
उजड़ी कांगड़े देस जाणा॥

नाम कांग्रेस दा सुणी खिस्क जांदे,
झोली चुक्कां दे हत्थ फसी जांदे,
कौमी नाम दा लड़दा सप लोको।
उजड़ी कांगड़े देस जाणा॥

हुण मन्नो गलाया कांशी दा,
डर रक्खो न तुसां फांसी दा,
असां लैणा सुराज झट लोको।
फिरी बस्सी कांगड़े देस जाणा।
फिरी बस्सी डोगरे देस जाणा॥[1]

(रूपान्तर)

इन पहाड़ के लोगों की अक़्ल मारी गई है।
कांगड़ा देस उजड़ जाएगा।

परदेस के (दूसरे स्थानों के) लोग जाग उठे
हमारे देस के लोग खूब सोए
इन्होंने कटवा दी नाक, लोगो।
कांगड़ा देस उजड़ जाएगा॥

हर जगह के लोग कांग्रेसी बन गए
हमारे पहाड़ के लोग डरपोक बन गए,
कौम का नाम लगे, तलवार का घात, लोगो।
कांगड़ा देस उजड़ जाएगा॥

1. कांगड़ा के लिए 'डोगरा देस' शब्द प्रयोग भी मिलता है।

घास, लकड़ी, पशुओं ने मति मार दी,
जीवन में भूलें करते, अक्ल मार दी,
झगड़ते, फिर तुरन्त कचहरी जाते, लोगो।
कांगड़ा देस उजड़ जाएगा॥

कांग्रेस का नाम सुनते भाग जाते,
स्वार्थी लोगों के हाथ फंस जाते,
कौम नाम का इन्हें लड़ता सांप, लोगो।
कांगड़ा देस उजड़ जाएगा॥

अब मानो कहना कांशी का,
डर रखो न अब तुम फांसी का,
हमने लेना स्वराज्य तुरन्त, लोगो।
तब कांगड़ा देस बस जाएगा।
तब डोगरा देस बस जाएगा॥

मेरा स्नेहा भुक्खेयां नंगेयां जो

दुबले पतले पीले मुखड़ू वाले बच्चे
नमोड़ियां मां, झुरियां पेड़यां अम्मां
कुस बेले तिक्कर
इक्की रोटिया दे टुकड़े ताईं
कुर्तुए दियां लीरां ताईं
झक्खां माह्रगे ओ!
दिक्खो! दाणे खोही कन्ने लेई जान्दे मुजारेंयां ते
जेहड़े दिन रात्ती मिह्णत करदे भुक्खे पेटे रेई के,
फसलां पकदियां तां बी भुक्खे,
फसलां लांदे तां बी भुक्खे,
टुकड़े नी मिलदे उनां जो सुक्के,
दस्सो! कुस बेले तिक्कर
ऐह दस्तूर रैंह्गे ?
कम करदे–
ओह् भुक्खे मरदे,

बेहल्ले रैहन्दे-
ओ रज्जी रोटियां खान्दे।
ऐह दस्तूर हुण नी चलणा!
कांशी ऐह डोण्डी पिट्टी गलान्दा!
जेहड़ा रोज-रोज गलान्दा रैहन्दा
कने जेलां जान्दा।

(रूपान्तर)

दुबले, पतले, पीले चेहरों वाले बच्चे
बेसहारा मांऐं, जिनके चेहरों पर
बुढ़ापे और भूख से झुर्रियां पड़ गई हैं—
कब तक रोटी के टुकड़े की ख़ातिर
और तन ढकने हेतु कुर्ते की लीर के लिए
झक्ख मारते रहेंगे।
देखो! मुजारों से —
जो दिन-रात भूखे पेट रहकर मेहनत करते हैं—
ज़िमींदार दाने छीन कर ले जाते हैं
वे— फसलें पकती हैं, तो भी भूखे
फसलें बीजते हैं, तो भी भूखे
उन्हें तो सूखे टुकड़े भी नहीं मिलते
बताओ! और कितनी देर तक
ऐसा दस्तूर रहेगा?
जो काम करते हैं
वे भूखे रहते हैं
जो बेकार रहते हैं
पेट भरकर रोटी खाते हैं— परंतु
ऐसा दस्तूर अब नहीं चलेगा।
कांशी ढोल पीटता हुआ ज़ोरदार शब्दों में कहता है
हर रोज़ यही दोहराता है
ऐसा दस्तूर अब नहीं चलेगा
और सज़ा होने पर
सहर्ष जेल जाता है।

मेरी कैद दुक्खां आली

मेरी कैद दुक्खां आली मुकदी नी
कदूं बाहर जाई देस सेवा करां मैं।

कमरा मेरा खड्डेआं आला
बाह्रों मारन ताला
बेड़ी सिल, लोहे आली, टुटदी बी नी।

फर्से पर सौणा, वस्त्र नी होणा,
बारी-बारी आई के जगाणा
निन्द नी औणी दिल घबराणा
मेरी रात दुखां आली मुकदी बी नी।

अद्धी कच्ची, अद्धी पक्की रोटी,
कन्ने मिलदी सब्जी बी फोकी,
ऐहो खांदे जेह्लां दे लोकी,
बेड़ी दंदा कने जेहड़ी छुट्दी बी नीं।

दाल् मसरां दी, दल्या आट्टा,
केई खाह्न रज, केई करन फाक्का,
असां करदे दोहां हथ स्याप्पा
जेहड़ी दाल् गुदामों मुकदी बी नीं।

मेरी पतंग आसमान चढ़ी ऐ,
जिहदी डोर माया दे हथ फड़ी ऐ,
हवा जोर चली ऐ,
जेहड़ी डोर पतंग वाली टुटदी बी नी।

कृपा कर हुण दीन दयाला।
मन ते अंधेरा, कर देयो उजाला,
भारत दे दुश्मन दा मुंह काला
कांशी अपनी डोर पतंग आल़ी टुटदी बी नीं।

(गुरदासपुर जेल, सन् 1921 ई० में रची)

(रूपान्तर)

मेरी दु:ख भरी कैद खत्म नहीं होती।
कब बाहिर जाकर देश सेवा करूं मैं॥

कमरा मेरा, खड्डों वाला
बाहिर से मारते ताला
बेड़ी भारी, लोहे की, टूटती नहीं।
मेरी दु:खों भरी कैद खत्म होती नहीं॥

फर्श पर सोना, वस्त्र नहीं होना
बार-बार आकर जगाना
नींद नहीं आती, दिल का घबराना
मेरी दु:ख भरी रात, खत्म होती नहीं।

आधी कच्ची, आधी पक्की रोटी,
साथ मिलती सब्जी फोकी,
यही खाते जेल के लोकी
बेड़ी (कड़ी) दांतों से छुड़ाई जाती नहीं।

दाल मसर की, दला आटा,
कोई पेट भर खाता, कोई करे फाका,
हम दोनों हाथ पीटते स्यापा,
जो दाल गोदाम में खत्म होती नहीं।

मेरी पतंग आसमां पर चढ़ी है,
जिसकी डोर माया के हाथ पड़ी है,
हवा ज़ोर की चली है
जो डोर पतंग की टूटती नहीं।

कृपा करो अब दीन दयाला।
मन में अंधेरा, कर दो उजाला,

भारत के शत्रुओं का मुँह काला
कांशी अपनी डोर पतंग वाली टूटती नहीं।
मेरी दु:ख भरी कैद खत्म होती नहीं॥

मूंढा गिल्ला होई गेया

थोड़ी बाकफी। तू पास्से ते लंघी
इक झोंका पौणा रा आया
मेरे कन्ने लग्गा। पता नी क्या होया।
मैं नेड़े होणे दी सोची
तू मुड़ी दिक्खया। मैं कन्नी भरया
फिरी तूं नेड़े होई लंघी
मेरे कने छूई करी। बाकफी बधी।
फिरी गल्लां होईयां
रूआं दियां, परांह् दियां, अपणियां-पराइयां
गल्लां रस आया, रसें गंध आयी
वाइदे होए, बड़े-बड़े
धड़कणा, धड़कणा दो धुड़-धुड़ होइयां
दो धड़कणा इक होई गेइयां।
दो साह लम्मे होई गेए, लम्मे हुण्दे चली गेए
न्हेरे बिच दो साह, दो चेह्रे इक दूए
पर झुकी गेए। झुकदे-झुकदे होर नेड़े होए
फिरी इक होई, सोई गेए
बड़ी निठड़ी जिन्द, बड़ा खरा चैन
हस्से, खेले पौणा च उड़े
डुआरी नेड़े री, फिरी दूर, फिरी होर दूर
कुछ फर्क पेया।
जीणे रे झमेले, जीणे रे रोणे
पेटे री अग्गी, अग्ग लाई
इक दिल फिरी दो होए
दूर, थोड़ी दूर, फिरी होर दूर होई गेए।
तू होर व्याह कीता/ कीता नी कराया गेआ
गलाया मेरे कने बी था/ फिरी सच होई गेआ

कई साल होए/ असां फिरी इक दिन मिल्ले
तेरे नौंएँ घर/ तेरिया नोइयां रीझां दे घर
जित्थू सब किछ था/ जे आदमी की चाहिदा।
तू रोटी ल्याई/ मैं खाह्दी
थोड़ा-थोड़ा झूंड कढी कने
न तू बोली, न मैं गल कीती
करदा बी क्या/ करने दी गल नी थी
पुरानी क्या तां नोई क्या ?
पुराना तार जोड़ी कने नोंआं जोड़ना
कुछ नी लग्गा खरा
पर दिला रा सुनेहा हाक्खीं दित्ता।
सारा रोणा, सारी कहाणी
इक फराके कन्ने दस्सी दित्ती।
सुख सारा पर इक्को दुक्ख
प्यारा रा रोणा/ अक्खां च कुत्थू ?
परेचने कने दिल धड़कने रा
पर ओह् धड़कना कुथू ?
लग्न ही नीं/ प्यारा री लकड़ी सुकी गेई
सुक्की लकड़ी नीर कुथू ?
रोणा मुकी गेआ/ अंजू सुकी गेए
डुआरियां भुली गेइयां
पता नी तिज्जो क्या होया ?
तू मौका पाई जोरे ने मिंजो जफ्फी पाई
छम-छम नीर दगे
मेरा मूंहढा गिल्ला होई गेआ
मेरे इक्को प्यारे कने
तेरियां खाखां लाल होई गेइयां
बुल्लां हंसी आई गेई/ सारा रोह् मिटेआ
, खड़ाक्का होया
तूं, दौड़ी गेई।

(रूपान्तर)

थोड़ा-सा परिचय/ तू निकट से गुज़री
एक झौंका पवन का आया
मेरे साथ लगा/ पता नहीं क्या हुआ ?
मैंने निकट होने की सोची
तूने मुड़कर देखा/ मैंने कन्नी सरका ली
तू फिर निकट होकर गुज़री
मेरे साथ स्पर्श करती सी/ परिचय बढ़ा
फिर बातें हुईं
इधर की, उधर की, अपनी-पराई
बातों में मज़ा आया/ मज़े में गंध आई
वायदे हुए बड़े-बड़े
धड़कनें, धड़कनें दो बार-बार धड़कीं
दोनों धड़कनें एक हो गयीं
दो साँस लम्बे हो गए/ झुकते-झुकते और निकट हो गए
फिर एक होकर, सो गए
बड़ा मीठा जीवन/ बहुत अच्छा चैन
हँसे, खेले, पवन में उड़े
उड़ान निकट की, फिर दूर, फिर और दूर
कुछ फर्क पड़ा
जीवन के झगड़े, जीवन के रोने
पेट की आग ने, आग लगाई
एक दिल, फिर दो हुए
दूर, थोड़ी दूर, फिर बहुत दूर हो गए।
तूने और विवाह किया/ किया नहीं कराया गया
कहा मेरे साथ भी था/ फिर सच हो गया।
कई साल हो गए/ हम फिर एक दिन मिले
तुम्हारे नए घर/ तुम्हारी नयी खुशियों के घर
जहां सब कुछ था/ जो एक आदमी को चाहिए।
तू रोटी लाई/ मैंने खाई
थोड़ा-थोड़ा घूंघट निकालकर
न तू बोली, न मैंने बात की

करता भी क्या ? करने की बात नहीं थी
पुरानी क्या और नयी क्या ?
पुराना तार तोड़कर नया जोड़ना
कुछ नहीं लगा अच्छा
पर दिल का सन्देश आँखों ने दिया
सारा रोना, सारी कहानी
एक इशारे में बता दी।
सुख सभी/ परन्तु एक ही दुःख
प्यार का रोना/ आंखों में कहाँ ?
दिल को फाड़कर, दिल की धड़कन का
पर वह धड़कन कहाँ ?
वह लग्न ही नहीं/ प्यार की लकड़ी सूख गई।
सूखी लकड़ी में रस कहाँ
रोना समाप्त हो गया/ आँसू सूख गए
उड़ाने भूल गयीं
पता नहीं तुझे क्या हुआ ?
तूने मौका पाकर मुझे ज़ोर से बाहों में ले लिया
छम-छम नीर बहने लगे
मेरा कंधा गीला हो गया/ मेरे एक ही प्यार से
तेरी गालें लाल हो गयीं, ओठों पर हंसी आ गयी
सारा ग़िला मिट गया
आहट हुई
तू, दौड़ गयी॥

पंज चिठियां

इक दिन सुपने धर्मराज मिलिया
अजें मेरियां मुच्छां नी फुटियां
ग्लाणा लग्गा-
कदूं औणा मेरे बाल ?
मैं गलाया चिट्ठी पांह्गा
मैं पुज्जी जांह्गा।

मेरी हाक्ख खुल्ली मैं उठी खड़ोइया
दस बार्हियां बीतियां, बीह् बर्हियां गेइयां
तीहां दी बारी आई
फिरी पंजांह् ते पुज्जेआ

इक दिन भ्यागा, दुखांने ओह्ले होइयां
तां झटट पूज्जेआ धर्मराजें
पहलै मैं नी पुच्छेआ
बड़िया देरा पुच्छेआ
मिन्जो जाद आई
मैं गलाईआ भाइया! तूं चिट्ठी नी पाई
पर मैं आई गिया।

गलाणा लग्गा
मैं पंज चिट्ठियां पाइयां ।
पहली चिट्ठी, बाल् चिट्टे होए
दूई चिट्ठी, दन्द टुट्टे
तीजी चिट्ठी, कन्न बोले होए
चौथी चिट्ठी उठणे-बोहणे ते तूं गेआ।
फिरी गलान्दा चिट्ठी नी पाई
कांशी गलाईया धर्मराजे जो
तू सच्चियां चिट्ठियां पाइयां।
मैं भरमाया कांशी गलाए
नेकी खाओ, बदी दे रस्ते न जाओ
मन खट्टी सच बोलो
झूठे रस्ते नां पोओ।
जित्थू होर कुछ बणादे
ओत्थू रब्बे दा नां बी कमाओ।

(रूपान्तार)

एक दिन स्वप्न में धर्मराज मिला
अभी मेरी मूछें नहीं निकलीं थीं

कहने लगा-
कब आओगे मेरे पास ?
मैंने कहा खत डालोगे
मैं पहुँच जाऊँगा।

मेरी आँख खुली, मैं उठ खड़ा हुआ
दस वर्ष बीते, बीस वर्ष बीत गए
तीस की बारी आई
फिर पचास को पहुँच गया।

एक दिन प्रातः दुःखों से अति हुई
तो झट से धर्मराज के यहाँ पहुँचा
पहले तो मैंने नहीं पूछा
बड़ी देर बाद पूछा
मुझे स्मरण आया
मैंने कहा, भाई! तूने चिट्ठी नहीं डाली
परन्तु मैं स्वयं आ गया।
कहने लगा—
मैंने पांच चिट्ठियां डालीं
पहली चिट्ठी, तुम्हारे बाल सफेद हुए
दूसरी चिट्ठी, तुम्हारे दाँत टूटे
तीसरी चिट्ठी, तुम्हारे कान बहरे हो गए
चौथी चिट्ठी, तुम्हारी आँखों का प्रकाश चला गया
पाँचवी चिट्ठी, तू उठने-बैठने के काबिल भी न रहा
तुम फिर कहते, चिट्ठी नहीं डाली
कांशी कहता, मैं घबरा गया
यही कहता— नेक कमाई खाओ,
बुराई के रास्ते पर मत चलो
मन से सच्च बोलो
झूठ के रास्ते पर मत चलो
जहाँ और कुछ बनाते हो
वहाँ ईश्वर का नाम भी कमाओ॥

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

पहाड़ी-डोगरी

स्वायाराम वैद्य	पहाड़ी सरगम	सरस्वती प्रकाशन मन्दिर डाडासीबा, हि. प्र. 1985
डॉ० बंशी राम शर्मा (संपादक)	हिमभारती (विशेषांक) 'पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम'	हि.प्र. भाषा एवं संस्कृति अकादमी शिमला मार्च-जून 1986
प्रो०रामनाथ शास्त्री	आजादी दी लड़ाई दा लोक सेनापति पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम	डोगरी संस्था, जम्मू, 1986
सम्पादक	शीराज़ा डोगरी (सितंबर-1988)	जे.के. अकैडमी आफ लैंगुएज एण्ड कल्चर, जम्मू
प्रो० एन.सी. पराशर	हिमधारा (त्रैमासिक)	दिल्ली

हिन्दी

निदेशक	हिमप्रस्थ 1984-85	लोकसंपर्क विभाग, हि.प्र. शिमला
निदेशक	संघर्ष के वे दिन	भाषा-संस्कृति विभाग (हि. प्र.) शिमला 1989
डॉ. बंशीराम तथा डॉ. कृष्णचन्द्र गौड़	पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम	भाषा संगम, इलाहाबाद-1991
(संपादक)	स्मृति विशेषांक	वही
वही	राष्ट्रीय एकता में भारतीय कवियों का योगदान	वही
डॉ. शमी शर्मा	पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम (जीवन एवं कृतित्व)	पोथीघर प्रकाशन सेराथाना, हि.प्र.

अंग्रेजी

Prof. N.C. Prashar Baba Kanshi Ram Publication Division New Delhi, 1985

अन्य स्त्रोत

डॉ. वेद प्रकाश अग्नि, दाड़ी, धर्मशाला, हि.प्र.
देशराज डोगरा - शीला रोड चैतड़ू, कांगड़ा हि.प्र.
स्व. स्वर्णकान्ता प्रेम, पुत्री मास्टर जगतराम गांव पद्धयाली, डाडासीबा, कांगड़ा, हि.प्र.
रविकान्त, पौत्र स्व० बाबा कांशीराम, गांव पद्धयाली, डाडासीबा, कांगड़ा, हि.प्र.